विजय



जंगल बबूल का

जंगल बबूल का

(सामाजिक कहानियां)

लक्ष्मी पुस्तक सदन

विजय



जंगल बबूल का

मूल्य □ तीस रुपए मात्र

प्रकाशक □ **लक्ष्मी पुस्तक सदन**

1539, रामकृष्ण भवन, गली मुकेश मार्केट,
गांधीनगर, दिल्ली-110 031

प्रथम संस्करण □ 15 अगस्त, 1986

मुद्रक □ डिम्पल प्रिन्टर्स, दिल्ली-31

JANGAL BABOOL KA (A Collection of Short Stories)

By : VIJAY

Price : 30-00

दो शब्द

विजय ने बहुत देर से लिखना शुरू किया। बहुत वर्षों तक तपने और संघर्ष करने के बाद उसने जो कुछ लिखा वह मन पर एक बहुत गहरा प्रभाव छोड़ जाता है। उसकी कहानियां अपने परिवेश से जुड़ी रहने के बावजूद मनुष्य मात्र की वेदना और व्यथा, आशा और आकांक्षा, आनन्द और उल्लास को सहज रूप में स्वर देती हैं।

अभी उनके पास बहुत समय है। लिखने का। जैसे-जैसे उनकी अनुभूति तीव्र होगी वैसे-वैसे उनकी रचनाएं और सार्थक तथा प्रखर होंगी। युग सत्य के साथ-साथ मानव मनोविज्ञान की समझ भी होनी आवश्यक है और यह समझ विजय में है। यही बात उनके भविष्य के बारे में आश्वस्त करती है।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएं उनके उज्जवल भविष्य के लिए।

—विष्णु प्रभाकर

आभार

- श्री सच्चिदानन्द शर्मा का जिनके परामर्श और प्रोत्साहन मुझे लिखने के लिए प्रेरित करते रहे।

- श्रीमती आशा राजपूत एवं प्रमोद कुमार का जिनकी सहायता मुझे बिना मांगे मिलती रही।

—**विजय**

कहां क्या !!!

●●

समर्पण

स्वर्गीय बाबूजी को

जिनसे साथ तब छूटा जब बारात और शव यात्रा का अन्तर भी मुझे ज्ञात नहीं था।

कर्ण का आक्रोश

ए. सी. स्लीपर की रंगीन खिड़की पर किरणें सतरंगा गुलदस्ता सजा रही थीं मगर नानू भाई को लग रहा था कि हर विभक्ति उनके अतीत के टूटे हुए तार की लड़ी है जो उनके वर्तमान में पुन: प्रवेश करने की चेष्टा कर रही हैं। गाड़ी के स्टेशन पहुंचने से काफी पहले उन्होंने कूपे में टहलना शुरू कर दिया। अन्दर एक सन्नाटा तैरने लगा। दिल अन्दर ही अन्दर तेजी से धड़कने लगा। ऊंचे ओहदे ने पुष्ट टांगों में स्थिरता बनी रहने दी, माथे पर दर्प दपदपाता रहा लेकिन अन्दर जो दिल था, उसकी न तो कोई पदवी थी और न ही वह लोहे का था। दिल में दहशत, आकांक्षा, भावना, नफ़-रत, संवेदना और अतीत के काजल के अन्धेरे निशान एक सामान्य इंसान की तरह स्पंदित थे। उम्र के साथ शक्ल में फर्क जरूर आया था पर नाम रूपी संज्ञा तो वही थी···। मंदिर के घंट नाद से चर्च की प्रतिध्वनि करती इमारत में पहुंच कर भी नानू भाई की सनद बदली नहीं और न ही उसकी गुजराती पहचान मिटी। साहबी ठाठ बाट के पीछे अचानक ही घी के पीपों से भरा गोदाम और अन्धेरी कोठरी में भटकता तोतला अतीत एक भूत की तरह अकेलेपन में उभर आता···। अब तक बचा रहा···पर अब इस शहर में वापस आकर मुझसे कैसे बचेगा नानू भाई···? 'श' को 'सा' बोलकर मूल अस्तित्व को अदृश्य रख पाना क्या संभव होगा?

नानू भाई तो अपना नाम भी बदलना चाहते थे पर फादर नेनकिन ने इनकार कर दिया, 'अपनी मिट्टी से जुड़े रहकर ही प्रभु का काम ठीक तरह से कर सकोगे नानू भाई। जैक्सन या जोसेफ बनते ही इस जमीन के शोषित वर्ग से कट जाओगे···दूरी बढ़ जायेगी प्रभु के बेटों से···।'

नानू भाई का नाम नहीं बदला फादर नेनकिन ने पर नानू भाई ने अपनी संतानों को शुद्ध अंग्रेजी नाम दिए फिर भी हर इतवार को चर्च जाने तक की फुरसत नहीं जुटा पाते हैं नानू भाई अब। लेकिन नानू भाई कहकर शुद्ध गुजराती लहजे में पुकार उठता है जब कोई कमीज की बायीं जेब के नीचे धड़कता दिल बेलगाम दौड़ के बाद हांफने लगता है··· दुख, ग्लानि, नफरत और बेबसी एक साथ घनीभूत हो उठते हैं और अपने जज्बात छुपाने के लिए तब बड़ी नफासत के साथ नानू भाई अपना पाइप साफ कर तंबाकू भरते हैं···। अकसर मैरी के चित्र में अपनी बाकी छवि को आंका है उन्होंने और इसीलिए अब मैरी के चित्र को निहारने से वे कतराते हैं। कई बार बुकस्टालों पर महाभारत और अन्य पुस्तकों में उन्होंने उलट-पुलट कर कुन्ती का चित्र देखना चाहा पर हर बार केवल कर्ण का चित्र ही सामने आया। एक दिन कुन्ती की व्यथा पर व्यंग्य करते हुए कर्ण के आक्रोश पर गहन ग्रंथ लिखने की अभिलाषा लिए हुए है उनका मन, पर डरते हैं कि किसी ईसाई द्वारा लिखे जाने पर तूफान न खड़ा हो जाए···। पर लिखना तो होगा ही·· छपवायेंगे नहीं, और क्या ?

स्टेशन पर काफी बड़ा अमला स्वागत के लिए मौजूद था। डिप्टी कमिशनर से लेकर इनकमटैक्स दफ्तर के चपरासी तक मौजूद थे···। शहर के पगड़ीधारी नामी व्यापारी, जिनकी बहियों की टेढ़ी भाषा पढ़ना नानू भाई जानते हैं, अपनी शक्ल दिखाने के लिए मौजूद थे। इतने बड़े दरबारी समुदाय ने अनायास ही नानू भाई को आशंकित कर दिया···। लगा, अभी कहीं कोई बोल उठेगा, पहचाना नानू भाई···। अरे, मैं काका हूं···तुम्हारी बा···बा को भी भूल गए ?

छी: ! अन्दर-ही-अन्दर अपनी आशंका को दुत्कारा नानू भाई ने। कौन काका···? कौन बा···? ये रिश्ते अगर जिंदा होते तो नानू भाई आज इनकमटैक्स कमिश्नर न होकर घी की आढ़त पर बैठे होते। रूमाल में महकते हुए हिना की जगह घी महकता होता। अपने ही तानों-बानों में उलझे नानू भाई ने पत्नी प्रोमिला की ओर देखा, जिसकी गोरी जांघें स्टाकिंग्स से ढकी हुई थीं और छरहरा जिस्म स्कर्ट-जैकेट में ठीक ऑड्रे हैपबर्न की भांति लग रहा था। परिवार के परिवेश

में, गुजराती टच का पूर्ण अभाव देखकर नानू भाई ने संतोष की सांस ली। डिप्टी कमिश्नर हमीद अली गर्मजोशी से परिचय करा रहे थे—'ये हैं छगन भाई टेक्सटाइल मिल है, ये प्रभू···पाइप फैक्टरी है ··ये हैं शंकर दयाल—इनकमटैक्स अफसर और ये हैं···।' चमकती तिजारती पुतलियों के वृत्ताकार घुमाव और चिकनी हथेलियों की रपटन अहसासते हुए नानू भाई भीड़ को आशंका से भरे काटते हुए निकल रहे थे···अन्दर कोई टेप किया संवाद दोहरा रहा था—अरे, ईसाई बन गया तो क्या नाता ही टूट गया ? कहीं खून का रिश्ता भी टूटता है ?·· बा से नहीं मिलेगा ? · नानू भाई को लगा कि कोई जबरदस्ती गले लगने की कोशिश कर रहा है। दिल कांप उठता है। गेट पर खड़ी लेडी टिकट कलेक्टर को टिकट थमा तेजी से बाहर निकलते हैं। गले में पड़ी मालाएं बाहों का दबाव सा लगती हैं। व्यापारियों की चमचमाती कारों को नकारते हुए दफ्तर की जीप की सीट पर मालाओं को उतार फेंकते हैं। प्रोमिला को चमचमाती बड़ी-बड़ी विदेशी कारों का बहिष्कार कुछ अजीब सा लगता है। बच्चों ने नानू भाई की आंख बचा मां से इशारे-इशारे में ही कुछ पूछना चाहा पर प्रोमिला निर्विकार हो बाहर देखने लगती है। बच्चे मुंह बिदका कर जीप की ठोस सीट पर बैठ जाते हैं। सड़क की धूल में जीप रेंगती है। नानू भाई एक लम्बी सांस खींचते हैं। पत्नी और बच्चों के दिल में उभरती जिज्ञासा को वे जानते हैं लेकिन वक्त के तीव्र गति से घूमते चक्र ने अन्दर-ही-अन्दर एक मेखला खींच दी है कि किसी को भी अपनी तसवीर के नुक्ते समझाने की न तो फुरसत मिलती है और न ही जरूरत महसूस की जाती है। फासला कभी घट ही नहीं पाता है। इस गैप को सिर्फ पैसे से भरा जाता है···।

वक्त की कमी ने बच्चों से नानू भाई को काफी दूर कर दिया है। बच्चों से ही क्यों···प्रोमिला और उनके मध्य भी तो एक अन्धेरी परत उभर आयी है। प्यार और प्यास की मजबूरी का पूरा अहसास है, यही समझ कर ईसाई अनाथालय से निकली प्रोमिला को उन्होंने जीवनसाथी चुना था, वो प्रोमिला ही भूल गयी कि जिंदगी के महल में घुसने से पूर्व नानू भाई के तलवों में अनगिनत कीलों के नासूर थे···उनके दर्द का अहसास

एक सहलाहट से देकर ही उन्हें सुखी किया जा सकता है। प्रोमिला का नैसर्गिक रूप कास्मेटिक्स, ब्यूटी सैलून की ओर दौड़ने लगा। कच्ची मिट्टी का सोंधी महक से भरा ताजमहल उसे नहीं भाया।···नानु भाई को लगता कि साहब बन कर भी शायद उनका मिट्टी सना मन नारी की झुकी हुई मादक दृष्टि के लिए पिपासित है···। शायद यह उनकी बची खुची हीनता का स्वप्न है और इसीलिए उन्होंने प्रोमिला को रोका नहीं, बढ़ने दिया क्लब, उद्घाटन, पिकनिक और ब्यूटी सैलून की ओर। इस बीच प्रोमिला भी भूल गयी कि पुरुष के अन्दर भी एक पुरुष होता है जो उसके नैसर्गिक रूप, नारीत्व और समर्पण के लिए तरसता है। उस तरसन का एक अलग मूल्य होता है। एक अलग अरमान होता है। संपृक्तता होती है। थके हुए नानू भाई और योजनाओं में खोयी प्रोमिला के मध्य आज भी कोई खाई या दुराव नहीं है पर एक-दूसरे तक आने-जाने के लिए शरीर और सेक्स का पुल भर जागता है। नानू भाई अपनी बात कहते नहीं हैं। वो अपने याचक मन को पूरी तरह मार देना चाहते हैं। प्रोमिला कभी-कभी भावुक हो सिरा पकड़ना चाहती है तो नानू भाई उस सिरे को काट देते हैं और जिस्म के पुल पर उसे खींच लेते हैं...अपनी तरसन को भूखा रख कर।

सोई हुई प्रोमिला की अलकों में उंगलियां फंसा नानू भाई जिंदगी की तलहटी में उतर जाते। अन्धेरा गहरा हो जाता। आतंक नसों में तनाव पैदा कर देता। आक्रोश में परिवर्तित हो जाता। हाथ कलम पकड़ने के लिए बेचैन हो उठते ·लिखना है। क्या हुआ, यदि बात हिंदुओं की है ? पर कहने और लिखने का हक सबको है। कुन्ती की मार्मिकता का नकाब हटा देंगे। एक नये कुन्ती-कर्ण नाटक का सृजन करेंगे।

कितनी विशाल हवेली थी·· कमरा-दर-कमरा लांघ कर आंगन की धूप तक पहुंचना संभव था। लोग भी कितने सारे थे पर अपना कौन था ? बड़े साब भाई (सौतेले भाई) नाली से उड़ी मक्खी की तरह दूर से हाथ झिड़कते···भाग···भाग···इधर क्या है तेरा ? कमर से फिसलते जांघिये का नाड़ा खिलौना-गाड़ी की रस्सी की भांति पकड़ भाभी दिशा बदल देतीं— उधर जा···। नानू भाई के शैशव को हर कमरा झिड़की देता···। आंसुओं से तर-बतर नानू भाई सुबकने के लिए चिरपरिचित अन्धेरी कोठरी में

पहुंच जाते···गला फाड़ चिल्लाते— बा ! ···पर बा के हाथ कभी-कभार ही खाली होते। बाहर से अपनी पूतना जैसी बेटी को खिलाती भाभी का अट्टाहास कमरे में धक्का देता। घृणा से नानू भाई नंगे फर्श पर गिरे जांघिये को गंदा कर देते। बा का चांटा अपने अन्दर की ईर्ष्या के मुकावले हलका लगता उन्हें। बा और भाभी को एक ही वक्त प्रसववेदना हुई थी— सुना था नानू भाई ने। पर भतीजी की भीमकाय काया का जन्म नर्सिंग होम के महंगे कमरे में हुआ था और नानू भाई दक्षिणी कोठरी में अवतरित हुए थे। दाई भी पैदाइश के बाद पहुंची थी। बा को पूरी पीड़ा झेलनी पड़ी थी। अन्दर-ही-अन्दर अकेले में पीड़ा सहने का सिलसिला नानू भाई के जीवन में मौजूद था···। बा की याद के रूप में···।

सुराज भाई पारीख ने पचपन की उम्र में विधुर होते ही हातिमताई की उदारता दिखायी थी। अपना एकाकीपन भूलने और सूखी देह की तड़-कन मिटाने के लिए बेसहारा विधवा की इकलौती लड़की को टूटी झोपड़ी से उठा सुराजमहल में पहुंचा दिया था। तब सोलह वर्ष की थी सरोजा बेन··। सुराज भाई का छोटा बेटा भी अपनी नयी बा से उम्र में बड़ा था। बड़े की तो शादी भी हो चुकी थी। सुराज भाई के आदर्श विवाह मे केवल उनका छोटा भाई मगन भाई गया था। अपने भाई से करीब बीस वर्ष छोटा था मगन भाई। कार में ससुराल आने तक मगन भाई को ही सरोजा बेन अपना दूल्हा समझे रहीं। जाने-अनजाने मगन भाई ने भी उन्हें कितनी बार छुआ और छूना चाहा। बर महोदय नकली बत्तीसी सटाये रास्ते भर झपकी लेते रहे।

नौकर के बड़ी देर तक कुंडी खटखटाने पर दरवाजा खुला था। पर अपने से बड़े बेटों और बहू को देख सरोजा बेन के दृगों से उतरते आंसू हैरत से परास्त हो वापस लौट गये। पूरे घर में व्यंग्य किरमिच की गेंद की तरह उछलते रहते। काम करती तो बेटे की बहू कहती, "रहने दो नयी बा·· बापू ने देख लिया तो गुस्सा करेंगे। अभी से नयी दुलहिन से काम लिया जा रहा है !" न करती तो बेटों की बड़बड़ाहट सुनायी पड़ती, "पटरानी आयी हैं घर ?"

सरोजा बेन के पैरों के नीचे गोंद की परत बिछ जाती। कदम न

हटता और न बढ़ता। नकली बत्तीसी से पिश्ते-बादाम की जुगाली करते सुराज भाई ढलान पर उतरती देह का शौर्य नृशंसता द्वारा प्रदर्शित करते। सरोजा बेन को लगता कि उसका नारीत्व धोबी घाट की पटिया है जिस पर सुराज भाई अपने मैले जिस्म को पटकते रहते हैं और थक के एक गहरी नींद सो जाते हैं।

सरोजा बेन की आत्मा और जिस्म स्वयं को घूरे की भांति निराद्रित और जूठा पा तड़पते ··। रात बिना सोये, बिना स्वप्न देखे कट जाती। दिन में कमरा-दर-कमरा हवेली एक भूतिया लाख का महल लगती। मगन भाई द्वारा उपहार दी गयी प्रसाधन सामग्री ड्रेसिंग टेबुल पर सजी रहती और सरोजा मायके के आंगन के दरिद्री आकाश की याद में डूबी रहती। उन्मुक्त दिवसों में स्वयं को डुबाना चाहती पर पिश्ते और बादाम के अर्क ने कैसा रासायनिक नाटक रचा है उसका पता ही नहीं चला। पता चला तो सीधे दक्षिणी अन्धेरी कोठरी में शरण ली और वहीं एक मटमैली संध्या में नानू भाई का जन्म हुआ। लगभग ठीक उसी समय नर्सिग होम में बेटे की बहू ने लड़की को जन्म दिया। घर लौटने पर व्यंग्य करते हुए पति से बहू ने कहा था, "कुछ गिजा लिया करो । नहीं तो मिलावट की कमाई दहेज में ही निकलती जायेगी।" सरोजा बेन ने नानू भाई को कसके सीने से चिपका लिया था। सरोजा बेन को आधार मिला था पर पति की हवस का आतंक सदैव पीछा करता रहता था। तब नानू भाई छह वर्ष के थे। दक्षिणी कोठरी में मां-बेटे का संसार दिन भर मुखरित रहता। सटे हुए गलियारे के साथ था सुराज भाई का सेफ लगा मोजाइक का कमरा। नानू भाई बा की गर्दन में बांहें डाले सो रहे हैं कि यकायक घी की हलकी महक उभरती है। चुभती हुई उंगलियों से कोई उनकी बांह हटाता है। सरोजा बेन मनुहार करती हैं, "अभी कच्ची नींद में है। सो जायेगा तो मैं खुद आ जाऊंगी ··।"

सुराज भाई को जवान पत्नी की मनुहार बहाना लगती है। नानू भाई को एक ओर फेंक सरोजा बेन के गाल पर थप्पड़ फड़फड़ाता है। नानू भाई मिचमिची आंखों से कसाई के पीछे जाती बा रूपी गाय को देखते हैं। आतंक इतना गहरा उभरता है कि चीख नहीं पाते हैं, रो नहीं पाते हैं।

अन्धेरे में थाह लेते हुए गलियारे में सरकते हैं नानू भाई···। बंद दरवाजे से कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, सिर्फ हांफती हुई गों-गों सुनाई पड़ती है। नानू भाई के नन्हें कलेजें का किनारा आंसू के प्रवाह के साथ कटता रहता। बा से रोने की वजह एक रात पूछ बैठे थे तो बा ने कहा था, "तू नहीं समझेगा नानू ··।" तब बा चौबीस की थीं और बाप तिरसठ के···।

शायद यह पहली बार हुआ और अन्तिम बार भी। नानू भाई का सिर सहलाते हुए अन्धेरी कोठरी में ही बातों की मिश्री बांटी थी बापू ने, "सरोजा बेन, तू चुप क्यों रहे ? अरे ! ये घर-बार सब तेरा ही तो है। तू तो स्वामिनी है। जैसा नानू तेरा, वैसे और भी तेरे।"

दो-चार दिन भाइयों का व्यवहार भी बदला रहा। किसी ने लाकड़ लड्डू दिये तो किसी ने चटपटा ढोकला। नानू भाई बटन की तरह विस्फरित पुतलियां घुमा परिवर्तन सूंघते रहे। बा कहना भी शुरू कर दिया था साव भाइयों ने। पर रात उसे सोया हुआ जान बा बिलख कर दीवारों को सुनाती रहीं, "सब बेईमान मक्खी हैं। अब दूसरे के छत्ते का शहद चाहिए ।इस लिए देवर को भाभी से फंसा रंडुवे मगन भाई का माल हड़पना चाहते हैं···। तेरी बा को बेचना चाहते हैं। पर मैं एक बार बिकूंगी · बार-बार नहीं। इन नरभक्षियों को मास नहीं लगने दूंगी मुंह।"

बा का प्रलाप उस दिन समझे नहीं थे नानू भाई पर शब्द आज भी याद हैं। वहीं तो हवेली में, अन्धेरी कोठरी और बा के साथ अन्तिम रात थी। उसके बाद तो फादर नैनकिन के संरक्षण में खुली खिड़कियों से झांकते सूरज की किरणों से भरे कमरे में आ गए थे। बा की उंगली छूट गयी थी। कुन्ती जैसे कर्ण को नदी तट पर छोड़ आई थी, वैसे ही बा छोड़ गयी थीं।

सूरज निकलने से पहले ही लात और ठोकरों के साथ बाहर निकाला गया था बा को। नानू भाई चीख उठे तो साव भाई ने गेंद की तरह उछाल दरवाजे के बाहर फेंक दिया था। जवान आंखों से आग और बूढ़े जबड़ों से झाग गिर रहे थे। वा ने बुदबुदाया था "बेड़िया···।" फिर दिशा-हीन सी नानू भाई की उंगली पकड़ कोसों दूर चलती रही थी बा। फादर नैनकिन को थमा अंतिम बार जी भर कर चूमा था। दहशत के अंधकार से निकल नानू भाई उद्वेलित-से देख रहे थे···बा के प्यार को। बा की मुड़-

मुड़ कर देखती गमन करती काया को···। हमेशा के लिए छूटती बा से विलग होने का सदमा एक वीतरागी की तरह सह गये थे वे। शायद अंधेरा और उजाला, प्यार और नफरत के बीच जीना अब अर्थ खो गया था। सिर्फ नानू भाई अपने साथ थे। उनके लिए कोई नहीं था। शायद जिंदगी शुरू उस दिन से होती है जब आदमी जान लेता है कि वह समस्त पृथ्वी पर चल-अचल के मध्य अकेला है··· उसका कोई नहीं है। इस ध्रुव सत्य को सात-आठ वर्ष की अवस्था में ही ग्रहण किया था नानू भाई ने। सबकी ममता भूल गले में लटके क्रॉस से अंदर-ही-अंदर बतियाना शुरू कर दिया था।

फर्स्ट क्लास फर्स्ट मैट्रिक में ले कर अपने विराट भविष्य का निर्माण उन्होंने किया था। फादर नैनकिन से भी विदाई मिल गयी थी। फादर नैनकिन ने पूरी कहानी दोहरा कर बतायी थी। बा का काका के घर बैठ जाना, विवाहिता बन जाना और बापू की सड़-सड़ कर हुई मौत की खबर भी सुना दी थी। बूढ़े राक्षस की नारकीय मृत्यु से जहां संतोष मिला, वहीं बा के परिणीता बन जाने की खबर से गहरा सदमा लगा था। आंसू चुरा गये थे नानू भाई···अंदर-ही-अदर मंथित होते हुए। मिशन की ओर से आगे बंबई पढ़ाई के लिए जान के लिए सामान तैयार करने लगे थे। बा अब काका मगन भाई के बच्चों की मां हैं, जान कर लगा था कि अतीत की एक मात्र अपनत्वपूर्ण परिधि से भी उन्हे विधाता ने बाहर फेंक दिया है, निष्कासित कर दिया है। बंबई में ही प्रोमिला से मुलाकात हुई थी···। उन्हीं की तरह अनाथ थी, अकेली थी। उन्हीं के शहर के स्लम से उसे बटोरा गया था···भूखा फुटपाथ पर मरणासन्न। जब भी किताबों से फुरसत मिलती, नानू भाई समुद्र तट पर मुट्ठी में रेत भर-भर कर जल में प्रवाहित करते। अंधेरा गहरा हो जाता तो प्रोमिला की अलकों में उंगली फंसा कर, मीलों लम्बा वीरान सपना देखते। सपना, जो निरंतर चलता···कांटोंपर उसके तलवे छिल जाते पर कहीं पहुंचता नहीं। किताबों ने उन्हें तेईस साल की उम्र में सीधे इनकमटैक्स अफसर बना दिया। प्यार के सादे रिहर्सल के बाद प्रोमिला का पति बना दिया और जिस सामाजिक गठन को वे पूरी तरह बदल देना चाहते थे उसमें खुद ही अपना रंग सहज

खो कर शामिल हो गये···बड़े आदमी हो गये···। हथेली के अंदर कलम को नकार सहज ही नोट सरका जाते···। पर अचानक ही उन्हें लगता कि ईसाई बन कर भी उनका व्यक्तित्व किसी पुराने कूबड़ को ढो रहा है। जिंदगी के महाभारत में वे कर्ण की तरह मर्माहत हैं··उनके आक्रोश को जगह नहीं मिली है! लोग उन पर उनके इतिहास को लेकर सहज हंस सकते हैं। पदोन्नति के साथ पूरा घर और घर के लोग गौरव से भर जाते पर नानू भाई के परिवेश की गहरी घाटी में राख का नया टीला सृजित होता·· धुंए से गला भर जाता। गुजरात के इस शहर में इन्कम-टैक्स कमिश्नर बन कर भी उनका कंठ रुंधा रहता । मौन होठों के मध्य ठंडी लाश की तरह लेटा रहता। कई बार अवेरी कोठरी वाली हवेली के सामने से कार लेकर गुजरे । चाहा, अदर झांक कर बचपन के म्यूजियम को देख लें···एक बार देहलीज पर थूक दें और अपने सब भाइयों को उस थूक को सहर्ष चाटता हुए देखें। लेकिन सांस भारी हो गयी और उन्होंने स्टेयरिंग मोड़ दिया । सोचा, किसी दिन इस घी-चट्टे घर के बही-खाते खुलवा कर इसे नीलाम ही करवा देंगे।

कार की बांयी खिड़की से मगन भाई की कोठी के हरियाले लॉन और फूलों की कतारों को भी देखा था। हर बार लगा बा·· नहीं, मिसेज मगन भाई अचानक ही दिखाई दे जायेंगी और तब वे गेट से गाड़ी सन-सनाते हुए ले जा कर उन पर चढ़ा देंगे···। क्या होगा? दो-चार साल की सजा···या माफी भर···।

अचानक ही अपने ड्राइंग रूम में बैठे-बैठे लगता कि कालबेल बजी थी और नौकर पूछ कर आया है। कोई सरोजा बेन हैं साब!

नानू भाई की शिराएं तड़क उठतीं— मुझे किसी से नहीं मिलना··· कह दो फिर कभी न आयें।

चीख सुनकर प्रोमिला दौड़ी आती है। कभी पति की दयनीन मुद्रा देख सारे अंग्रेजी संस्कार भूल कर पति को वक्ष से चिपका लेती, पूछती, "कोई बुरा सपना देखा था क्या ?"

मीठी नारी देहगंध में नानू भाई लंबी सांस खींच राहत महसूस करते ···और गहरे डूब जाते···। बा की युवा देह से ऊर्जित ममता-गंध का अह-

सास होने लगता···।

प्रोमिला लोशन के नीचे अपनी त्वचा को अहसासती और त्वचा-स्पर्श अतीत तक उसके अहसासों के रथ को, वक्त चक्र को उलटा घुमा पहुंचा देता-दूर-बहुत-दूर। प्रोमिला डिस्टेंपर पर दृष्टि जमाये अदृश्य में खोये-खोये कहती, "कभी इस शहर में अनाथों की तरह हसरत भरी नजरों से साबरमती के भरे-भरे पाटों को देखती रहती थी। नदी जब सूख जाती तो चिकने पत्थर बीन लाती थी। दुकानों के शीशों में सजी चीजों पर हसरत भरी नजरें डालती रहती थी। और आज? जहां जाती हूं हर बंद अलमारी का ताला बिना चाबी के खुल जाता है। सेल्समैन हर गहना, हर कपड़ा या शॉ मेरे सामने ऐसे फेंक देता है जैसे उसे ग्रहण कर मैं उन्हें कृतार्थ कर दूंगी। बिल मांगती हूं तो हाथ मलते हुए शर्मिंदगी से कहा जाना है, 'लज्जित न करें मैडम, कहीं घरवालों से भी दाम लिये जाते हैं?' किसी समय ये ही दुकानदार सीढ़ी के पास खड़े होने पर दुत्कार कर भगा देते थे ··मानो गरीब होने का अर्थ है-चोर होना, बेईमान होना, एक सड़ांध पैदा करना। उनके झुके हुए घुटने और विनती करते स्वर मेरी पुरानी ठेसों पर मलहम लगा देते हैं। मेरा ईगो मुझे गहरी सुकून अता करती है तब। अगर मैं बच्चों से कहूं कि चौदह वर्ष की उम्र तक मैंने आइसक्रीम नहीं खायी थी तो क्या उन्हें विश्वास होगा? आज जो भी वे पा रहे हैं, हमसे पा रहे हैं। हम उनके लिए ऊंचाई की मीनार हैं। अतीत को स्लेट पर लिखे अक्षरों की तरह धो-पोंछ कर मिटाया नहीं जा सकता है पर आदमी उसे लेकर अपने सुख को बरबाद कर ले, यह भी ठीक नहीं। चाहो तो एक बार सड़क पर नंगा खड़ा कर तमाशा बना दो उनका, जिन्होंने तुम्हें सताया था। फिर अपने अतीत को भूल उनके वर्तमान पर दिल खोल कर तुम हंस सकते हो।'

पर प्रोमिला के आलिंगन में मिली राहत क्षणिक ही होती। प्रोमिला अपना कर्तव्य पूरा कर गहरी नींद में सो जाती। भूलने की चेष्टा में नानू भाई को बा और भी याद आने लगतीं। लगता कुंती का इतिहास एक बड़ा झूठ है ··कर्ण के आक्रोश को जमाना तरजीह क्यों नहीं देता है?

दफ्तर से निकल कार मेहता मार्ग की ओर मोड़ देते है। इनकमटैक्स

का नाम सुनकर मगन भाई की जीभ कांपने लगती है।

"हमारे पास क्या है हुजूर? घी की आढ़त में हमेशा टोटा ही रहा ···। जगत और रजत ने कारखाना खोल कर मुसीबत खड़ी कर दी है। आज हड़ताल, कल बोनस, परसों महंगाई के नारे···। फिर पाई-पाई इनकमटैक्स जमा करो···।"

नानू भाई पूछते हैं, "कौन-कौन रहता है?"

शंकित भर्राये स्वर में कहते हैं मगन भाई, "मैं···पत्नी···दो लड़के ···एक बहू और एक बच्चा उसका।"

"सिर्फ दो लड़के हैं आपके? और आपके भाई के?"

"भाई से क्या···? उनके तीन हैं···एक चौथे का···!" आगे मगन भाई पारीख बोल नहीं पाते हैं।

"चौथा भाग गया क्या?" नानू भाई पूछते हैं।

"इसमें इनकमटैक्स का क्या मतलब?" जबड़ा कस जाता है।

"है! वही चौथा लड़का अपने बाप और अपनी मां की जायदाद में हिस्सा चाहता है···इसीलिए मुझे भेजा है," कहने के साथ बूढ़े को परखते हैं नानू भाई।

पर बूढ़ा रुकता कहां हैं? "सुना तुमने···तेरा नानू जायदाद में हिस्सा मांगता है। बाप की जायदाद से भी, मां की जायदाद से भी।"

सरोजा बेन की सुतवां देह गलीचे पर शब्दहीन पदचापों के साथ चल कर पार्श्व में आ बैठती है। नानू भाई का अंतर्मन कंपित हो उठता है। चाहते है कि जर्जर वक्ष में सिर छुपा कर खोयी हुई ममत्व-संपदा को पुनः अर्जित कर लें। पर कर्ण का आक्रोश उन्हें रोकता है। ममत्वपूर्ण स्निग्ध चेहरा···दुख और दहशत लिये पसरी हुई आंखें···क्या सब कुछ पा कर भी तुम इतनी ही निर्धन और अकेली हो बा, जितना कि मैं?

मगन भाई आक्रोश के साथ हथेली पर मुक्का मार, कहते हैं, "जो मेरा नहीं, उसका जायदाद में हिस्सा कैसा? मेरे पास रहा कब? मैंने गोद भी नहीं लिया···फिर हिस्सा कैसा?"

"पर उधरवाले कहते हैं कि मां के साथ गया था···। यहां छोड़ा होता यहां का हिस्सा होता। वकील कहते हैं कि दोनों पर हक है।" नानूतो

भाई आवेग को दबा तटस्थ भाव से कहते हैं।

पार्श्व में बा की सिसकती कंपित आवाज कान में जाती है, "दे दो उसे भी हिस्सा···। जैसा जगत और रजत वैसा ही नानू मेरा है···। मैंने ही तो उसे छोड़ दिया था चर्च में···। पर एक बार भी मिलने नहीं आ सका। बा की याद नहीं आयी उसे···सिर्फ जायदाद का हक याद आया। आखिर अपने बाप का अंश है।"

नानू भाई को लगता है कि कुंती की व्यथा के सामने अनायास ही कर्ण का आक्राश फीका पड़ने लगा है। अन्दर के उद्वेलन को संभाल उठ खड़े होते हैं, "मैं समझा दूंगा नानू भाई को बा···। अपने बाप के अंश हैं तो बा के अंश भी तो हैं··मान जायेंगे।"

लपक कर दरवाजे की ओर सरकते हैं। तभी बा की चेतावनी भरी आवाज सुनाई पड़ती है, "रुक जा नानू, मैंने, तुझे पहचान लिया है···छल मत कर।"

नानू भाई रुकते नहीं हैं। द्वार के सामने खड़ी हतप्रभ मगन भाई की काया सनातन-संबंध के मध्य दुर्गम शिला की भांति लगी थी। नानू भाई उसे बिना छुए आगे बढ़ जाते हैं। जानते हैं कि रुक जाने का अर्थ है बंध जाना। गाड़ी के चलते ही उनके आक्रोश की छाया पिछली सीट से कूद कर अदृश्य हो जाती है। साबरमती आश्रम के बाहर कार रोक, टिकट खरीद अंदर घुस जाते हैं···। अंदर लाइट एंड साउंड का अंग्रेजी शो चल रहा था। नेपथ्य में शुभा लक्ष्मी का भजन गूंजता है-**वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे**

ठंडी हवा के झोंके थकी देह को अपूर्व आराम पहुंचाते हैं। उठते हैं तो भरी-भरी साबरमती में चांद को हंसते हुए पाते हैं। किसी भी आक्रोश का चिह्न न तो नानू भाई के अंदर था और न प्रकृति में।

●●

लेटा हुआ वट वृक्ष

सम्भ्रान्त लोगों की एक बड़ी भारी भीड़ बरामदे के आगे खाली खुली जगह में लगे टैंट में उपस्थित थी। जमीन पर रखे कुशासन पर तुम अर्थात् डा० सदानन्द चितले ध्यान मग्न परिवेश में साक्षात् वेद पुत्र की भांति लग रहे थे। सप्रे कालोनी की सड़कों को बुहारती हवा जब अन्दर आती तो हवन की आग और तेज हो जाती थी, तुम्हें लगता था कि हर देवता सहर्ष तुम्हारी आहुति स्वीकार कर रहा है। तुम्हारा गोरा चिट्टा ···विशाल व्यक्तित्व शिखा की आंच से दपदप कर आर्यत्व प्रस्फुटित कर रहा था।

तुम बार-बार गद्‌गद् भाव से अपनी सौतेली मां···नहीं अपनी मां को बीच में देख रहे थे ··।···तुम्हारे अन्दर श्रद्धा का सिन्धु लबालब भरा हुआ था। अपनी सौतेली मां को जिन्हें तुम आई कहकर पुकारते थे तुमने सदा भक्ति भाव से पूजा है। सौतेले शब्द की संज्ञा तुम्हारे अंतर्मन में कहीं थी ही नहीं और दूसरों द्वारा भी सौतेले शब्द का उच्चारण तुम्हें असह था। अपनी आई की पुत्री और दो पुत्रों को भी तुमने अपना सगा ही समझा···। उन्हें सदैव अपना कर्तव्य माना और उनके वर्तमान तथा भविष्य के लिए ही क्षण प्रति क्षण प्रयत्नशील रहे। बीसवीं सदी के बूढ़े जर्जर क्षणों में भी युग उत्तेजना तुम्हारे अन्दर दाखिल न हो सकी···। तुम सतयुग या त्रेता के कर्मठ···ज्ञानवान और कर्तव्यनिष्ठ मानव की तरह वर्तमान के कलुष से बचे रहे। भेदभाव और निजी स्वार्थ के काले स्याह फरिश्ते तुम्हारी रूह के अन्दर प्रवेश नहीं पा सके। तुम वन्दनीय रहे और वन्दना करते रहे···।···ठीक अपने सदानन्द नाम को सार्थक करते

हुए दूसरों को सुख देने में आनन्द महसूस करते रहे…अपना शोषण करके। अपने तने को दुशाला उढ़ाए और जड़ को सुखाते हुये।

तुम्हारे पीछे ही बैठे तुम्हारे सौतेले भाई…नहीं, सौतेले नहीं कहूंगा अन्यथा तुम बुरा मान जाओगे। अर्थात् तुम्हारे दोनों भाई कसी हुई जीन्स के कारण काफी असुविधा महसूस कर रहे थे। बार-बार उनकी आंखें उपस्थित भीड़ में बैठी युवांगनाओं के दिलफरेब जिस्मों से सरेस लगे पतझर के पत्ते की भांति चिपक जाती थीं…।…उनके होंठ गोलाकार हो सीटी बजाने के लिए उद्यत होते पर तुम्हें और चन्द प्रोफेसरों को देख अपनी तीव्र प्रतिक्रिया को उन्हें दबाना पड़ता। कई बार एक दूसरे के कान में तुम्हें पाखंडी और अपने बोर होने की बात कह चुके थे। उनका ख्याल था कि गृह प्रवेश में इतने भीषण यज्ञ और पूजा की आवश्यकता ही क्या थी…? लोगों के पास इतना फालतू वक्त कहां है जो कर्मकाण्डों में घन्टों बैठे रहें। लोग तो बधाई देने और पार्टी खाने आते है। आम आने वालों को चार-चार लड्डू पकड़ा कर रवाना कर दिया जाता है… कुछ खास चुनिन्दा लोगों को रात के डिनर के लिए रोक लिया जाता है। उन रोके हुए लोगों में कुछ जवान लड़कियां भी होती हैं जो अपने रूप और किल-कारियों से नए घर की दीवारों में मीठी गुदगुदा देने वाली इकोज… गूंज भर जाती हैं……खूबसूरत अहसास और अन्दाज की परछाईयां फर्श और दीवार पर छोड़ जाती हैं।

युवा भाइयों के बगावती ख्यालों से कहीं दूर तुम तो नत मस्तक हो हवन और श्लोकों में खोए हुए थे। तुम द्वापर के अन्त पर रचित दोहा भूल चुके थे या तुम्हें याद नहीं आ रहा था :

"पुरुष बली नहीं होत है, समय होत बलवान।
भिलनी लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बान।।"

तुम्हें अपनी आई साक्षात देवी नजर आ रही थीं। गमलों में सहज सींचकर उगाए सुमनों को छूकर आती हवा की लहरें तुम्हें निरन्तर संतोष का अहसास दे रही थीं। तुमने यह मकान अपनी आई के नाम समर्पित किया है इसीलिए इसका नाम रखा है "नन्दनी सदन"। पर इस सारे कार्यकलाप में तुम्हारी आई घबराई हुई अपने वाचाल पुत्रों को कई

बार चुप रखने के लिए आंख दिखा चुकी हैं और अपनी बेटी कुंतल को खोजने का प्रयास कर चुकी हैं। अपनी बेटी के आस-पास दिखाई न देने से वे मन ही मन चिंतित हैं। शनिवार बाड़ा से आए धनाड्य दामोदर सावंत के मनचले बेटे के प्रति कुंतल के आकर्षण का उन्हें पता है। लड़का उन्हें नापसन्द हो ऐसी बात नहीं है पर अनन्त सांवत के साथ हर महीने एक नई लड़की का नाम जुड़ते और छूटते नन्दनी सुन चुकी हैं और उन्हें इसीलिए कुंतल की फिक्र है।

कई बार आई तुमसे कुंतल के विवाह की जल्दी करने की बात कह चुकी हैं मगर तुम्हारा कहना रहा है कि बिना शिक्षा पूरी किए कुन्तल का विवाह ठीक नहीं होगा। नारी के जीवन में अचानक ही उभरे अमंगल में दृढ़ता, शक्ति और स्वाभिमान के लिए नारी का पूर्ण शिक्षित होना आवश्यक है जिससे वह कभी पशु की भांति दीन और अनाथ न महसूस करे।

तुमने अपने सिद्धांत की आड़ में छुपे वर्तमान के सत्य को नहीं पहचाना कि कुन्तल बी. ए. के अंतिम वर्ष में पहुंचने तक कितनी बार लुढ़क चुकी है और बाईस पार करती उसकी आयु का बसंत पूर्ण मदनाक्रांत हो चुका है। नारी का यौवन एक वेग होता है जो खुद बहता है और दूसरों को बहा ले जाता है। तुम बीसवीं सदी के अन्त में भी मर्यादा पुरुषोत्तम बने कुत्सित युग गंध से अनभिज्ञ थे क्यों कि तुम सच्चे और मेहनती थे···। दूसरों से तुम्हारा संपर्क दूरी का था और तुम सबका भला चाहते थे। तुम्हें मालूम नहीं था कि आजकल निर्माण का अर्थ है पहले विनाश···। शांति का अर्थ है ··कोलाहल·· पुलिस की गोलियां और फिर सन्नाटा। पर तुम तो बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के भूले हुए मंत्र को अपने अन्दर प्रतिष्ठित किए हुए थे। अन्दर की सहजता के बावजूद बाहर का अवरोध द्वारा जनित गतिरोध तुम्हारे ध्यान में नहीं आया था।

तुम्हें शायद यह भी पता नहीं है कि बी. एस. सी. की परीक्षा देकर जब पहली शाम बाहर निकल गए थे तो तुम्हारे पिता के कानों में आई ने मंत्र जाप शुरू कर दिया था। घर की आवश्यकताओं की सूची·· बच्चों के भविष्य की चिन्ता और पैसों की कमी का वो नक्शा खींचा गया था कि

तुम्हारी आगे की पढ़ाई बन्द होने वाली थी ।

पर शायद तुम दो-तीन महीने के अवकाश में इस बार बेकार नहीं भटकना चाहते थे इसीलिए जब रात घर लौटे थे तो एक प्रतिष्ठित टी. वी. कोचिंग इन्स्टीट्यूट में पढ़ाने का काम मिल जाने की खबर घर में सुना दी थी । तीन सौ रुपये की इस होने वाली आमदनी ने सन्नाटे में डूबे घर को एक बुरी खबर सुनाने के लिए रोक दिया था । बी. एस.-सी. में तुम्हारी पहली पोजीशन को देख यूनिवर्सिटी ने तुम्हें पढ़ाई शुरू होते ही दो सौ रुपये का वजीफा देना भी शुरू कर दिया था फिर भी तुमने कोचिंग क्लास जारी रखी थी । सारी कमाई और बजीफा तुम आई के हाथों में समर्पित कर देते थे और तुम्हारा खर्च ही क्या था ? किताबें पुस्तकालय से मिलती थीं, हाथ खर्च की तुम्हें जरूरत नहीं थी । इकलौता खर्चा बस के किराए में लेकर शेष को तुम भूल जाते थे । तुम्हारे कुर्ते पाजामें को देख लड़के और लड़कियां हंसते थे पर तुम्हारे व्यक्तित्व··· तुम्हारी सौजन्यता और पांडित्य को देख वे ही लोग तुम्हें सिर झुकाकर नमस्कार करने लगे थे···।···तुम उनके आदर्श व्यक्ति बन गए थे···पर तुम्हें कुछ पता नहीं था ।

लेकिन घर में पांच सौ रुपये पहुंचाकर भी तुम अन्य संतानों की तरह लोणी और तूप से सदैव वंचित ही रहे । तुम तो राइस प्लैट की तरह सीमित खाना अपनी मेज पर व्यस्तता से खाकर पढ़ाई में खो जाते थे । तुम्हारे पिता बुझती हुई आंखों से और मूक कराह के साथ सब कुछ सह रहे थे । जिस देह सुख के लिए विवाह कर उन्होने परिवार बढ़ा लिया था उसके लिए स्वयं को दोषी पा रहे थे पर तुम तो ज्ञानार्जन में ममता की आकुलता को भी भूल गए थे । जो तुम पाना चाहते थे उसमें तन-मन से डूबे हुए थे । मौसम······परिवार और कल्पना तुम्हारे ऊपर कोई असर नहीं डाल पा रहे थे । तब तक नन्दनी दो बार फेल हो चुकी थी । पर जिस वर्ष अखिल सातवीं में पहली बार फेल हुआ तो तुम्हें गहरा आघात लगा था ।

तुमने आई से अखिल के खिलन्दड़पन पर रोक लगाने के लिए कहा था । आई ने तब शांत शब्दों में तुम्हें ही लताड़ दिया था—"हर कोई तेरी

तरह किताबी कीड़ा तो हो नहीं सकता है फिर अखिल को कोई देखता भी कहां है ?"

सुनकर कुछ बुरा लगा था तुम्हें। फिर शांत मन से तुमने सुचिंतन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस झिड़कन में सौतेलेपन या अलगाव वाली बात नहीं थी अपितु हर भारतीय मां छोटों पर कुछ ज्यादा ही भावुकता के साथ प्यार करती है। यशोदा ने भी बलराम से अधिक कृष्ण को सिर चढ़ा रखा था।

तुमने पार्ट टाईम और अपनी पढ़ाई के मध्य अखिल के लिए समय निकाल पढ़ाना शुरू कर दिया था और उसी दिन से अखिल ने मन ही मन तुमसे नफरत करना शुरू कर दिया था।

उसी वर्ष निखिल की छमाई रिपोर्ट पढ़ तुम सकते में आ गए थे पर तुमने कुछ कहा नहीं था क्योंकि तुम्हारे पिता मृत्यु शैय्या पर लेटे हुए थे। आई ने घर में प्रवेश करती हर अवनति के लिए अपने बच्चों की वकालत कर नक्षत्रों को दोष दिया।

लेकिन फिर भी भौतिकी में तुम पूरी यूनीवर्सिटी में प्रथम आये···। नक्षत्रों द्वारा भेजा अमंगल तुम्हें छू नहीं सका। लेकिन तुम्हारी सफलता का हर्ष एक गहरे अवसाद में डूब गया। स्वर्ण मेडल की बधाई देने आए विद्यार्थियों और प्रोफेसरों को अर्थी में शामिल होना पड़ा। फिजिक्स में कीर्तिमान स्थापित करने का उल्लास अधरों तक पहुंचने से पहले सिसकी में डूब गया। जो क्षण हंसता हुआ आया था रोता हुआ गुमनाम होकर चला गया। लेकिन मन्दाकिनी के प्रथम अपनत्व पूर्ण स्पर्श से मिली सांत्वना का सुख तुम अन्दर ही अन्दर महसूस करते रहे। शायद सुख या दर्द का अनुभव तुम्हारे भाग्यकोष्ठक में नहीं था। इसीलिए स्पर्श पाकर भी मन्दा को तुम पा नहीं सके।

हवन सम्पूर्ण होते ही तुम श्रद्धाभाव से आई के चरण स्पर्श करते हो। अखिल और निखिल तो तांक-झांक में ही व्यस्त रहते हैं। आई भी एक अधूरा अस्फुट आशीर्वाद छोड़ व्यग्र मुद्रा में कुंतल की तलाश में

लग जाती हैं।

पर कुतंल की बात तक आने से पूर्व तुम्हें उस दिन की बात बताना भी तो आवश्यक है जब पिता का दाहकर्म कर थक कर चूर हो तुम गहरी नींद में सो गये थे।

उस रात आई अपने बच्चों को नव शिक्षा से विभूषित कर रही थी —"अब तुम अनाथ हो गए हो। वे तो कुछ छोड़ कर गये नहीं···।··· नौकरी वह भी प्राइवेट थी···।·· न कोई फंड और न ही पेंशन का सहारा है। इसलिये सावधान रहना···अगर सदानन्द ने आखें फेंर लीं तो फुट-पाथ पर रहना होगा।"

दोनों लड़कों और लड़की की काईयां आखों में एक दहशत उभर आई थी। पर दूसरे दिन ही उनकी आंखों का खौफ कुटिलता के साथ मुस्कराने लगा था। 'तुम निरे मूढ़ हो' यह अनुमान उन्होंने लगाया था।

तुमने प्रात: की मंगल बेला में आई के चरण स्पर्श कर उनके आंसू पोंछते हुए गम्भीर भाषण जो दे डाला था—"मैं तुम्हारा बड़ा बेटा हूं आई। तुमने मुझे अथक प्यार और लाड़ से पाला है। मुझ पर तुम्हारा पूर्णा-धिकार है और इसीलिए जब भी मेरे कर्तव्य में कहीं त्रुटि पाओ तो चेता-वनी दे देना। मेरे भाई बहनों में भविष्य का भय मत बैठाना···।···उनके लिये बाप की जगह मैं हूं···।···उन्हें हर्षित देखकर ही मैं सुखी रह सकता हूं। जब तक भाई पढ़ नहीं जाते और कुतंल का विवाह सम्पन्न परिवार में नहीं हो जाता तब तक मैं सन्यासी की तरह रहूंगा।" यह तुम्हारी प्रतिज्ञा थी···भरत प्रतिज्ञा···।···पर आई की कैकयी तो अन्दर की मंथरा को नहीं मार सकी।

और तुम सदानन्द चितले समर्थ होकर सन्यासी हो गए। पहले डिमान्स्ट्रेटर और पी. एच. डी., फिर यूनीवर्सिटी में अध्यापन शुरू कर दिया। तुम्हें घर के लिये···आई के लिए और भाई बहनों के लिए पैसा चाहिए था। तुम्हारी न्युक्लीय भौतिकी की पुस्तक भारत के किस कालिज और विश्वविद्यालय तक नहीं पहुंची परन्तु तुम सन्यासी ही बने

रहे। सामने मिलती मन्दा का एक मोहक मुस्कराहट से स्वागत कर बीच में मौन तरंगों को उपजा देते। मन्दा जाती तो उदास हो जाते। मुस्कराहट से स्वागत, खामोशी और उदासी की सीमा से आगे नहीं जाने दिया प्यार को तुमने। विकास प्राधिकरण से भूखण्ड प्राप्त कर आई का मकान बनवाना शुरू कर दिया। अपनी जमानत पर एक बड़ा कर्जा आई के नाम निकाला। तुम्हें लगता कि सन्यास का अब अन्त होने वाला है। नन्दनी सदन के एक कमरे में एक दिन तुम अपनी बाहों में मन्दा को बांधे गीत गुनगुना सकोगे···यह अहसास तुम्हारे अन्दर जनमने लगा था। आंख बन्द किए तुम चूड़ियों की खनखनाहट सुनते···।···गुलाबी कपोंलो पर मांग से ढुलका हल्दी कुंकुम-सिन्दूर तुम्हें झलकता हुआ दिखाई देता।

तुम आई से मन्दा को मिलाना चाहते थे। तभी निखिल का नतीजा निकला था। बड़े मार्जिनल मार्क्स से पास हुआ था। अखिल भी लड़खड़ाते हुए अपनी कक्षा में पहुंचा था। तुम व्यस्त थे। तुमने मन्दा से दोनों लड़कों को पढ़ाने की प्रार्थना की थी। मन्दा को लगा था कि तुम्हारे भाईयों को अपने निकट रख तुम्हारे पास पहुंचने की कल्पना पूरी हो जायेगी। अखिल और निखिल के गाल सुनकर गोल हो गए थे और आंखों में जुगनू जलने बुझने लगे थे।

मन्दा उन्हें मैथ्स पढ़ाती और वे झुकने पर ढीले हुए ब्लाउज के अन्दर मन्दा के यौवन को खोजते रहते। मन्दा उनकी मूढ़मति पर खीजती पर उनके अन्दर जागते शैतान को स्वयं भी नहीं पहचान सकी। जानती तो तुम्हें बताती पर क्या तुम मानते? उदारता और धैर्य का उपदेश मन्दा को पकड़ा व्यस्त हो जाते—बहुत काम पड़ा है मन्दा अभी···।·· तुम किसी तरह संभालो।

और एक शाम अनहोनी घट ही गई। अखिल मन्दा के पास था और निखिल ने कुण्डी चढ़ा दी। विस्फरित···आतंकित पहले तो मन्दा संज्ञा शून्य-सी हो गई पर फिर लाज बचाने को चण्डी बन गई। क्या उठाया क्या मारा कुछ याद नहीं रहा। भागते हुए अखिल और निखिल के पीछे

महाकाली की तरह रोद्र रूप में दौड़ती रही मन्दा···।

आई के पास तुम्हें बैठा देख मन्दा के अभद्र व्यवहार और काम पिपासा की कैसी झूठी कहानी गढ़ अखिल ने अपने सिर की दरार दिखा दी थी। तुम्हें पहले तो अविश्वसनीय लगा था पर अनुज का रक्त देख तुम तन गए थे। पीछे से दौड़ती आती मन्दा को बिना सुने ही लताड़ के तुमने भगा दिया था। अपने प्यार के स्वरूप ग्रहण करते आकार को चाक की लिखाई की तरह मिटा दिया था। तुम्हारी दहाड़ की प्रताड़ना घर लौट-कर भी भूल नहीं पाई थी मन्दा। झटपट सामान उठा अपनी रिसर्च को अधूरा छोड़ चली गई थी। अपने तन की खरोंचों से ज्यादा पीड़ा तुम्हारे द्वारा मिली अदावत से महसूस की थी। तुम ने राम बनकर सीता को बनवास अता कर दिया था पर राम की तरह सीता को अन्दर-ही-अन्दर अकलंक महसूस नहीं किया था। यह भाग्य था या विधि का खेल अथवा कलयुग में तुम जो भूमिका अदा कर रहे थे अब केवल एक विदूषक के उपयुक्त थी वह भूमिका। शायद विडंबना कहते हैं इसे। मन्दा की नौक-रानी ने तुमसे मिलना चाहा था पर तुमने इन्कार कर दिया था।

जीवन के पहले नीले सुमन को प्यार के रूप में अर्जित कर तुमने सपने देखना शुरू किया था पर सपनों की उम्र बहुत छोटी थी। शायद तुम्हारा अस्तित्व सिर्फ आगे बढ़ने के लिए था··अन्धेरा तुम्हें पागल नहीं कर सकता था पर थम कर आराम करने की गुंजाइश तुम्हारे भाग्य में नहीं थी। पर अभी तक अकेला होने का आभास दंश तुम्हें जगा नहीं सका था। तुम आई, अखिल और निखिल के लिए अपनी तपस्या में निमग्न थे।

आई के जाते ही तुम मेहमानों की भीड़ में खो गए थे। तुम्हारी आई सशंकित इधर-उधर दौड़ रही थी और तुम बातों में मशगूल थे। कुंतल के अकुलाते यौवन से अनभिज्ञ तुम्हारी आत्मा उसे बच्चा ही सम-झती थी। तुम्हें लग रहा था कि वह किसी कोने से अचानक ही निकल आयेगी··हंसती हुई मुखरित···।···त्रिपार्श्व में प्रवेश करती किरण

जैसे सात रंगों में रंगकर बाहर निकल आती है।

अखिल और निखिल को आई ने बाहर दौड़ा दिया था। अंतिम मेहमान को भी विदा कर जब अन्दर पहुंच तुमने आई का आर्तनाद सुना तो चौंक उठे थे। आई रुदन स्वर में गा रही थी—"हाय कुतंल तू भी मुझे छोड़ गई।"

तुम समझ नहीं सके थे कि कुतंल कहां जा सकती है ? पूरे शहर में थ्री व्हीलर पर उसे तलाशते रहे थे। अनन्त सांवत ने भी कुतंल के बारे में अनभिज्ञता प्रकट कर दी थी। रात गहरी हो चुकी थी। थाने में रपट दर्ज करा तुम भी भटक-भटक के नन्दनी सदन के सन्नाटे में लौट आए थे। तुम्हारा कदम पहली बार कुचला हुआ और असहाय महसूस कर रहा था। आई बार-बार अखिल और निखिल को गले लगा रही थीं और तुम दूर खड़े एक टक देख रहे थे। शायद सब लोग तुम्हें हाड़ मांस का नहीं, प्रस्तर का समझते थे जिसे सिर्फ एक रोबोट की तरह कर्तव्य करना था …अहसास की गली में जिसका अस्तित्व गुमनाम था।

सुबह के सुहावने क्षणों में आगतुकों के साथ फिर आई का रुदन प्रारम्भ हो गया और तुम एक कोने में फीके से स्तब्ध खड़े थे। कुलकर्णी की नौकरानी जो पहले मन्दा के पास काम करती थी बाहर खुलेआम कह रही थी—"मन्दाबाई का शाप लग ही गया। जैसे लड़के वैसी लड़की…। आखिर एक ही छाती का दूध पिया था।" तुम भभक कर बाहर आए थे।

लेकिन वह चुप नहीं हुई, कहती रही—"तुम्हारे भाइयों ने मन्दाबाई की इज्जत लूटनी चाही पर तुम्हें विश्वास नही हुआ। आज अपनी बहन भागी है तो किसी और पर कीचड़ उछालो। जैसा किया वैसा पाया।"

तुम्हारे जर्जर तन और मन पर घड़ों बर्फ का पानी आ गिरा था। अपने अपराध का अहसास होते ही तुम अन्दर कराह उठे थे। लेकिन आई के रुदन के मध्य तुम्हारी कराह किसे सुनाई पड़ती। अन्दर आते ही आई ने पेशेवर लड़ाकू की तरह कहा था—"सदानन्द तू आदमी है क्या? हिजड़े

की तरह सुनता रहा···।···दो लात नहीं लगा सका नीच जात को।" यह एक मां का उपदेश था या मंथरा की फूंक।

कहीं दूर शहर को प्रदूषण से बचाने के लिए बनाए गये घने जजीरे अर्थात ग्रीन बेल्ट से जब गीदड़ ऊहा···ऊहा कर रहे थे तब बरामदे में लेटे हुए तुम जाग गए। अन्दर से स्पष्ट फुसफुसाहटें बाहर आ रही थीं।

—"तुम्हें चालाक और समझदार होना चाहिए लड़को·· सदानन्द जान गया तो बुरा होगा।"

—"जान जाएं। मकान तो तुम्हारे नाम है। आधा किराए पर उठा देंगे।"

तुम्हारी नस-नस तड़फ गई थी। आकाश पृथ्वी पर बिछा हुआ लगा था और हर सितारा कांटे की तरह चुभ रहा था। मन्दा की याद हूक की तरह उठी थी पर छूटी हुई गांठ से दूर हुई नारी के क्षितिज कितनी दूर होते हैं इसका अन्दाज तुम्हें आज हुआ। मन्दा को खोकर तुम प्यार से ही वंचित नहीं हुए थे अपनत्व का एकमात्र आधार भी तुम से दूर हो गया था। तुम्हारा मर्यादा पुरुषोत्तम अस्तित्व असहनीय वेदना से कातर हो उठा था। अपनी हस्ती को मोमबत्ती की भांति मधम-मधम पिघलते हुए तुम देख रहे थे। तुम्हारी रोशनी में चोर डाकू रास्ता पा रहे थे। तुमने चाहा कि तुम खुद को बुझा दो जिससे जिन्दगी की बद-अमनी से भरा सत्य तुम्हारे सामने से हट जाए। तुम मन्दा के शाप से स्वय को पूरी तरह घिरा हुआ पा रहे थे।

दूसरे दिन आई को टैक्सी में लेकर बहाने से बैंक ले गए थे। अपनी जमानत वापस ले मकान को अदालत के जरिए रिहन करवा दिया था बैंक के नाम। तुम्हें मालूम था कि ऐसा नहीं किया तो जोंके इस मकान में रहेंगी और तुम फुटपाथ पर रहकर किस्तें भरोगे।

कटे-कटे से घर में तुम वक्त काट रहे थे। रिसर्च स्कालर्स को तुम अधिक समय देने लगे थे। अक्सर बाहर खाकर ही आते थे। तुम्हारी मेज

पर सदा की तरह खाना रखा रहता था। खिड़की से बाहर फैंक तुम कुत्तों का पेट भर देते थे। सुबह बर्तन उठाने वाला यही समझता रहता था कि तुमने खाना खा लिया है।

उस दिन सिर दर्द की वजह से तुम जल्दी लौट आए थे। अन्दर आई के साथ कुन्तल बैठी बोल रही थी—"विवाह नहीं किया अभी तो क्या हुआ। अलग बंगला दिया है ···।··· नौकर है···।···अनन्त रात में मेरे साथ ही रहता है···।·· ढेर सारा रुपया रोज छोड़ जाता है।"

कुन्तल का घृणित बयान रुका तो आई का गलीज परामर्श शुरू हुआ "—आदमी पर विश्वास मत करना कुन्तल ··।···सूरज मुखी की तरह रोशनी के साथ मुड़ जाता है ··।···जो हाथ पड़े दबाती जा···।··· या यहां जमा करदे। कभी बुरे वक्त पर काम ग्रायेगा।"

तुम्हारी पूरी देह ज्वर पीड़ा के कंपन की भांति हिलने लगी थी। महान आदर्शों के स्वरूप में खड़ी तुम्हारी बहन अनन्त सांवत की अभिमानी रखैल बन चुकी थी और तुम्हारी आई उसके घृणित स्वरूप को और बिगाड़ने की पूरी कोशिश में रत थी तुम शर्म से पानी-पानी हो रहे थे ··।···तुम्हें देख आई रसोई में चाय बनाने चली गई थी और कुतंल एक फिल्मी पत्रिका पढ़ने लगी थी। अपने भाई को कुछ बताने का उत्तरदायित्व उसने महसूस ही नहीं किया। उसके लिए तुम थे ही क्या? जिसने खुद अपने पैरों पर सदा कुल्हाड़ी मारी थी वह सदानन्द चितले कैसे वहां टिक सकता था। दौड़ते हुए बाहर निकल थ्री-व्हीलर में बैठ पेशवा पार्क उतर गए। कालेजों के लड़के-लड़कियां किसी की भी उपस्थिति से बेखबर अपने रोमांस में रत थे। उनके अश्लील रोमांस ने भी तुम्हें छुग्रा नहीं। तुम स्वयं को मरते हुए प्राचीन वट वृक्ष की तरह महसूस कर रहे थे जिसने अपनी जबान शाखाओं की छाया में उन लोगों को प्रश्रय दिया था जो अदृष्य शैतानी नाखूनों से तुम्हारी जड़ें नोंचते रहे थे। आज जब जड़ का रेशा-रेशा टूट गया है तो वे अपने नाखून तुम्हारी आंखों के सामने तुम्हारे तने में घुसेड़ रहे थे।

चढ़ती हुई रात से निर्विकार, निर्लिप्त तुम आठ मील पैदल चलकर डेक्कन जीमखाना पहुंच गए थे जहां से एक सड़क शिवाजी नगर स्टेशन की ओर जाती है और दूसरी नन्दनी सदन की ओर। अचानक ही तुम बहुत गहरी थकान महसूस करते हो। अपने वट वृक्ष को प्राणहीन महसूस करते हो और ट्रैफिक की परवाह किए बिना दोराहे पर लेट जाते हो। तुम्हारे दो पैर दो अलग-अलग रास्तों की ओर फैल जाते हैं। अर्ध-सुप्तावस्था में तुम गुनगुनाते हो।

"पुरुष बली नहीं होत है समय होत बलवान
भिलनी लूटी गोपिका वही अर्जुन वही बान।"

वाहन लेटे हुए वट वृक्ष पर रोशनी फैंक कतराते हुए चले जाते हैं। तुम नहीं जानते हो कि तुम्हें कौन जगाएगा। कौन उठाएगा और तुम किधर जाओगे? हां, इतना जरूर निश्चित है कि तुम्हारी छाया में अब अतीत के पिशाच जो नन्दनी सदन में षडयंत्र रच रहे होंगे कभी प्रश्रय नहीं पायेंगे।

●●

आमीन

क्या सच जानने की कोई खास जरूरत है आदमी को ? साईकिल के पैडल पर पैर रखते हुए उसने सोचा ··। उसे लगा कि आदमी अपने सच को छुपाने के हर हुनर में माहिर होना चाहता है···बस दूसरों के सच को जानने के लिए बेताव रहता है···।···अन्यथा सैयद हसनअली को उसके और नाजिमा के मध्य उभर रहे रिश्ते से क्या मतलव था ? मतलब ···? अपने ऐब भी तो छुपाने हैं दूसरे के राज खोलकर···।·· साला जब देखो तब फातिमा गर्ल्स कालेज की मैनेजरी के नाम पर किसी न किसी को बैठक में बिठाए रहता ··।···स्साला ··।···नकावपोश ।

फूल-सैयद से तार घर तक···साईकिल खीचने में उसके अपने पुर्जे ढीले हो गए। ऊपर से धुंआ-धार धूप ·।···गरमी वो भी आगरा की गर्मी ··।·· आदमी चार कदम चल-के कुत्ते की तरह हांफने लगता है···। फ़िर भी टोलियों पर टोलियां आती हैं । संगमरमर के इतिहास को छूने···। ··अनुभूतिहीन जिज्ञासाएं बुझाने । ज्ञान की··इतिहास की दहाई छूना जरूरी है जैसे ··।···जिससे कह सकें—हमने भी देखा है··· ताजमहल···।···मुमताज···शाहजहां की मुहब्बत···का प्रतीक···।··· अपने नाम से एक धब्बा इरेज कर उनकी सारी जिज्ञासाएं बुझ जाती हैं···।

साईकिल आवाज करती है··चूं···चीं···चूं···। साले मोबिल आयल की जगह कैरासिन और रेपसीड मिला के पुर्जों में डालते हैं···और

कैरासिन वाले कैरासिन में मिलाते हैं पानी···।···चलाने वाले का हलक सूखता है और पीने के लिए रास्ते में कहीं पानी नसीब नहीं होता है।··· नाजिमा कहती है···इतनी दूर आने के बाद लौटने की गुंजाइश नहीं है रफीक ··।··पर जिन्दगी कुछ और भी मांगती है···किमखाब नहीं तो गाढ़ा तो चाहिए पहनने को।··गोश्त और मक्खन नहीं तो रोटी चाहिए ही···।···सिर पर साया चाहिए ही ··।·· तुम नौकरी कर लो। छोटी-सी तनख्वाह में भी मैं गुजारा कर लूंगी···। लगता है किसी की वेणी से फूल गिर कर सड़क पर चलती उसकी साईकिल के नीचे आ गया है । ···ख्वाब कराह उठता है···। ··नौकरी···छोटी नौकरी···। बड़े अरमान···।···दिल और दिमाग के बीच वो उल्टा लटक जाता है···।··· चमगादड़···।···नहीं ! हिन्दुओं के त्रिशंकु की तरह···।

"···एक फार्म चाहिए···।"···साईकिल स्टैन्ड से मिली पच्चीस पैसे की पर्ची को संभाल के जेब में रखते हुए···काऊंटर पर खड़ा हो कहता है·· ।

"फार्म···?···अच्छा आपरेटर वाला न···। अभी आते हैं बाबू वो ही देंगे···।···जरा लंच करने गए हैं··।" खिड़की और उसके मध्य एक तीली जलती है। बीड़ी का धुंआं उभरता है। रफीक चिड़चिड़ा उठता है ··।···यह खीज बाबू के न होने पर थी या नाजिमा को लेके बुलन्दियों पर कटी पतंग की तरह लावारिस होने पर थीं···?" "लंच···? पर तार घर में तो लंच···?"

···खीज भरा प्रश्न अधूरा रह जाता है···"हां सरकारी तौर पर नहीं है···पर आदमी को आठ घण्टे में भूख-प्यास लग ही जाती है···।··· आप भी कैन्टीन में चा-चू पी आईए । तब तक आ ही जाएंगे···।" कैनवास पर धूप के ऊपर धुंआ फैल जाता है। धुंए से बचने के लिए या कैन्टीन की ओर जाने की प्रतिक्रिया में उसके कदम अबाउट टर्न हो जाते हैं···। ···अन्दर-ही-अन्दर उसकी बड़बड़ाहट को खामोशी निगलती रही और पसीना तर करता रहा···।···अब एक चाय भी पीओ···।···पचास पैसे

का खर्चा और, साईकिल का किराया एक घण्टे की जगह दो घण्टे का···। ···साईकिल स्टैण्ड का किराया···पच्चीस पैसे···।···फार्म की कीमत दो रुपये ··। पर नौकरी···?···अखबार सिर्फ खाली जगह की सूचना देता है ··। ··और नाजिमा कहती है कुछ भी करो। कोई भी छोटी-मोटी नौकरी कर लो वरना ··।···वरना वो जानता है कि एक भारी महर के एवज में उसे कोई और ले जाएगा···।···अम्मी कहती है—रफीक बहुत हुआ···।···अब और नहीं खींच सकूंगी। अब आंखें जवाब दे रही हैं···। एम. ए. हो गए हो···।···साहब नहीं तो बाबू बन जाओ। रजिया भी सयानी हो रही है ··।··जमीर···घायल पक्षी की तरह फड़-फड़ाता है।

✓छोटी नौकरी···?···रजिया···।···नाजिमा···।·· सब उसे उस जिन्दगी की तरफ धकेल रहे हैं जहां चारों तरफ से लोहे की दीवारें घेरे रहती हैं, गीले कोयले का धुआं उभरता रहता है···। औरतें और बच्चे मिसकते रहते हैं···।···आसपास संडास से दुर्गन्ध उठती रहती है·· इससे तो फुटपाथ की जिन्दगी बेहतर है···।···भीख बेहतर है···।··· जहां रिश्तों का कर्ज नहीं उतारना पड़ता है···।···और बड़ी नौकरी एक लम्बी तैयारी के बाद···कम्पीटिशन में अच्छे परचे करने के बावजूद इण्टरव्यू तक गर पहुंच भी गए तो सिफारिशी मक्खन के अभाव में सूखे फूल की तरह झर जाती है सफलता···।···काबलियत! बिना सिफारिश के··· नकामयाबी की तसदीक है।

क्या पता आई. ए. एस. क्वालीफाई करके भी इण्टरव्यू में अटक जाए···।···इकानामिक्स का फर्स्ट क्लास···सुनहरी गोटे में बंधी डिग्री ···धूल के ढेर तले दब जाए···।···काश उसके ऊपर किये खर्चे का मुआ-बजा मिल जाए तो वो उस डिग्री को यूनिवर्सिटी के बगीचे में सहर्ष दफ-नाने के लिए तैयार है···।···कम से कम अम्मी का कर्ज निपट जाएगा···। ···पर नाजिमा···?···लगता है पांव में कांटा गड़ा है···।··· चलने पर चुभता है···।···रुकने पर दुःखता है···।

कूपन स्टाल पर थमा चाय का कप ले-के एक खाली कुर्सी में धंस

जाता है···।···एकदम कड़वी चाय···।···चाय नहीं···कड़वी है लाचारी···।···उसे महसूस हो जाता है कि हर टूटन के साथ जिन्दगी की एनाटामी से वो और वाकिफ हो जाता है।···इसीलिए उसका सैन्स आफ रियलाईजेशन सैंसटिव हो गया है।

पैर घसीटता वापस आता है···।···खिड़की पर बाबू को बैठा देख आंखों में चमक आ जाती है···। लगता है···उबर गया···।···पसीने से भीगे नोटों में से एक साफ नोट काऊंटर पर रखते हुए कहता है···"एक फार्म···।" दूसरे हाथ से रूमाल चेहरे पर रगड़ता है··।···जानता है कि ऐग्जिस्टेन्स की लड़ाई से उभरा बेफिक्रा बाबू मैला पुराना नोट लेगा नहीं···।

"फार्म तो कल मिलेंगे···।···सुबह दस बजे ही खतम हो गए थे···। ···आदमी भेजा है स्टोर से लाने पर···।···पर···।···साले सब खाने-पीने वाले हैं स्टेशनरी स्टोर में।·· सरकारी काम सबसे बाद में···।··· ट्रक का ट्रक स्टेशनरी का रास्ते में गायब हो जाता है···और फिर थर्ड क्लास पैन्सिल, सी ग्रेड कागज स्टोर में पहुंच जाता है···।·· सब के कमीशन बंधे हैं···।" एक लम्बा वाक्य सुबह के साईरन की तरह गूंजता चला जाता है।

रफीक को लगा कि रात के अंधेरे में किसी कार की लाईट ने चकाचौंध कर दिया है···।···हर मिलती चीज हाथ से साबुनकी गीली टिकिया की तरह फिसल जाती है···। हर सच उसे पागल कर जाता है। · हर छोटी बड़ी सरहद··पहुंचते-पहुंचते आगे सरक जाती है···।···वो भटक जाता है ··।···दिशायें बदल जानी हैं···।···चावला साहब से मिला था ···मोटी आसामी थे ··। पढ़ाई-लिखाई की पूछ कर बहुत खुश हुए।··· ···बोले थे—ऐसा ही टियूटर मुझे चाहिए था···। पर रफीक की जेब का हर सिक्का जेब में आने से पहले धूल में लुढ़कता हुआ अदृश्य हो गया···।

अम्मी ने बड़ी उम्मीद से पूछा था—'मिल गई टियूशन···?"

जूत का फीता खोलते हुए हाथ रुक गए···।···लगा सुबह चमकाए

हुए जूतों की पालिश जुबान पर कड़वा रही है···। छी···।···उसने अम्मी के पीकदान में थूकते हुए कहा—"नहीं"··।

"क्यों···?···तू तो कहता था कि···।"···

"कह दिया···न ! नहीं मिली···।···वो किसी मुसलमान से अपनी लड़कियां शाम के वक्त नहीं पढ़वायेंगे··और मेरा नाम राकेश कुमार या वृन्दावन लाल नहीं है···।" उसे लगा कि वो जरूरत से ज्यादा चिड़चिड़ा हो गया था···।···एक आम···सत्य है यह। तास्सुबी ढग से नहीं कहना चाहिए था···।

"दोजख में जायें ये मुए···।···मुसलमान का इल्म क्या हिन्दू के इल्म से कम या जुदा होता है···?···" अम्मी बड़बड़ाती हैं···।

"होता है···।···अम्मी फर्क होता है···। इसीलिए तुमने रजिया को पास के एन्थोनी स्कूल में नहीं पढ़ाया···कि···वहां लड़कियां परदा नहीं करती हैं···। मुंह खोले दुनिया भर में चेहरे की नुमाईश करती हैं···।···इसीलिए चावला साहब ने···।"···आगे कुछ न बोलकर वो फीता खोलने लगता है।

अम्मी विचक उठती है···। "···यह तो हमारे इस्लाम का असूल है···। इसमें फर्क की तो बात नहीं है···।"

"है अम्मी···एक खास बात है···।···वो पौधे जो कटघरों में पलते हैं···उनके पास ताजा हवा नहीं पहुंचती है··और जो लावारिस की तरह पनपते हैं वो जंगली हो जाते हैं···।···पौधे के लिए बीज ही नहीं··देख-भाल, एक माली भी चाहिए।"

उसे महसूस हुआ कि वो कुछ बेतुकी बात बोल गया है जिससे अम्मी के सवाल का जवाब नहीं बनता है···।···हां। जमीर ने जहां उसे रोका था···उसका एक झूठ अलबत्ता उसे पासपोर्ट और बीसा दिलवा देता···। ···अपना नाम राकेश, सोहन कुछ भी कर देता···। और सीधा मिसेज चावला की डाईनिंग टेबुल पर पहुंच जाता···।··सुअर और गाय की भिड़ंत से बचकर सीधे चार सौ रुपये एक घण्टे की मेहनत के जरिए उसकी

जेब में पहुंच जाते···।···सिर्फ एक झूठ···उसे नाजिमा के करीब पहुंचा देता···।

साईकिल हाथ में पकड़े हुए वो पैदल चल पड़ता है···।···सूरज की आग से ज्यादा उसके अन्दर की राख गर्म थी···।

साईकल ताजमहल के परकोटे की लाल दीवार से टिका·· वो पैन्ट की जिप नीचे करता है ··और इत्मीनान से पेशाब करने लगता है···एक ठण्डी हवा का झोंका जिस्म को छूता चला जाता है···।···अन्दर-ही-अन्दर वो शाहजहां को एक व्यंग्य मिश्रित धन्यवाद अर्पित करता है·· जिसकी मेहरबानी से एक तरावट-भरा क्षण उसे मिला···।···एक ठण्डा क्षण··· बिना किसी शर्त के···बिना किसी मजबूरी के मिला।

रेशम कटरे से गुजरते हुए नाजिमा के मकान पर निगाह डालता है। उसके रिजल्ट पर बधाई देते हुए जाकिर साहब ने कहा था—"बरखुरदार। आजकल की पढ़ाई का नक्शा ही दूसरा है···।·· बी. ए. पास एक अर्जी नहीं लिख पाते हैं ··।···हम तो नवीं तक पढ़े थे। लग गए कोर्ट में···।···ये मकान··जायदाद··सब उसी से निकाला है···।"···फिर संजीदगी से कहा था—"··कोई बड़ा इम्तहान पास करो···।··जज कलैक्टर बनो··नहीं तो ये एम. ए., पी. एच. डी. सब बेकार।"

वो अनायास ही रुक गया था इसका उसे ख्याल ही नहीं रहा···। और नाजिमा कहती है ··छोटी-सी ही नौकरी करो। पर कुछ करो··· क्योंकि अब मैं बिना तुम्हारे जी नहीं सकूंगी ··।···पर। क्या वो जिन्दगी होगी···? रफीक फिर सच के करीब पहुंच जाता है। अहसास करील से उलझ जाते हैं···। सैयद हसनअली एक विशाल राक्षस की तरह सामने आ खड़ा होता है···।

उसे लगा कि वो कुएं और खाई के बीच में खड़ा है और चारों तरफ से आवाजें उसे तकाज़ा देती हैं। पुकार रही हैं···।

वो किधर जायें ?

साईकिल दुकान वाले को लौटा···वो पुरानी मण्डी की तरफ निकल

पड़ता है। धूप और भी धुल पुंछ गई थी···।···धर्मदास की दुकान से चरस और गांजा-भरी सिगरेट खरीद···शाहजहां पार्क में पत्तों के ऊपर चलता हुआ वो आगे बढ़ता है···। ··पत्ते आवाज करते हैं···चर्र···मर्र···।

सिगरेट सुलगा, पौण्ड नम्बर तीन के किनारे इमली के पेड़ के तने का सहारा ले अनगिनत कमल दलों को ताकता है···।···छपाक···। लगता है···नाजिमा तालाब में कूद पड़ी है, एक बार उभर के गोल पत्तों के नीचे उसका चेहरा छुप जाता है···।···फिर अम्मी·· फिर रजिया। वो उठना चाहता है···पर चारों ओर सिगरेट से उठता धुआं···पहले एक लाचारी और फिर एक बेफिक्री जगाता हुआ उसके चेहरे के गिर्द उभरता रहता है···। एम. ए. की सुनहरे फीते से बंधी डिग्री···नीले जल पर तैरती हुई अदृश्य हो जाती है···।

जमीर के बोझ से मुक्त होने के लिए टांगें पसार··उन डूबते चेहरों से अलग होने की चेष्टा में···वो वहीं लेट जाता है···।···गम परेशानियां···? नीचाईयां मजहब और मजबूरियां···?···धीरे-धीरे सब एक द्रव्य में क्रिस्टल की तरह घुलते और अदृश्य होते जाते हैं···।·· ठेठ अंग्रेजी लहजे में वो बुदबुदाता है—डैम्मिट। धुंआं रंगीन और गहरा हो जाता है और तस्कीन उसे सहलाती और विश्वास दिलाती नजर आती है कि ···अए रफीक··अब न किसी बीते कल का दर्द, न वर्तमान का मलाल और न ही आने वाले कल का ओछापन रहेगा···।···तू हर दिशा, हर बंधन, हर आदेश, इल्म, जमीर और कर्म से मुक्त है··मोक्ष तुझे अपने क्षितिजों के पालने पर सुला रही है···।

सुलगती हुई सिगरेट अब काफी छोटी हो गई थी···।·· गुलाब के फूल की तरह रफीक ने उसे सीने पर रख लिया···।·· ठीक दिल के ऊपर···।···कमीज सुलगने लगी थी···और आंच से बेपरवाह रफीक रंगीन धुंएं में तैर रहा था···।···काल से परे··कर्म और गति से परे···।

शोषण···।···तनाव···।···लाचारी···।···सूखे पत्तों में विलबिलाते

कीड़ों की तरह उसकी पीठ के नीचे दबे···मरे पड़े थे···।·· सैयद हसन अली का अस्तित्व जस्ते की भाँति गंधक के तेजाब में घुलता हुआ अदृश्य हो रहा था···। रफीक के अधर फड़फड़ा के रह गए·· ।·· आदतन निकलने वाली गाली स्वरहीन गलियों में खो गई···।

पेड़ के ऊपर बैठे किसी पक्षी ने अनायास ही कहा···आमीन···।··· फिर सब कुछ खामोशी में लिपट गया··।···होश आते-आते अपनी ही चर्बी की जलन से व्याकुल होता हुआ वो उछला···।·· पर पांव के नीचे जमीन नहीं आई···।···कमल के पात के नीचे उसका अस्तित्व पुनः खोए हुए नाजिमा···अम्मी···और रजिया के जिस्मों को तलाशता रहा। एक मछली की तरह तड़प भारी करवट के साथ वो नीचे ही नीचे तैरने लगता है।

●●

शुतुरमुर्ग

निगम नोटों की पर्त जमा, बुशशर्ट की पाकिट में डाल लेता है। पाकिट ठीक दिल के ऊपर होती है और पाकिट में अगर पैसा हो तो दिल में सुकून रहती है। निगम की जेब में आठ दस दिन आराम से कट जाने की तस्कीन स्फूर्ति भरती है। पूरे चार दिन की हाड़-तोड़ मेहनत से झुके हुए कंधे अचानक ही हलके हो जाते हैं।

शनिवार को नाटक शुरू होगा। हजारों दर्शक नाटक और अदाकारों को सराहेंगे या टमाटर फेंकेगे किन्तु अपनी सम्पूर्ण सार्थकता के बावजूद निगम द्वारा सृजित तीन बड़े-बड़े सैट आंखों के सामने निरन्तर रहकर भी अदृश्य रहेंगे। ऐसा क्यों? निगम की मेहनत महज सात-आठ सौ रुपये की उजरत के नीचे दबके रह जाती है। उसका चित्रकार गुमशुदा वादी में अपने को खोजता है · अंधेरे कमरे में स्वयं से बातें करता हुआ थक जाता है और तब उसके कदम शराब की दुकान की तरफ बढ़ जाते हैं। उस दिन रात कहां गुजरी उसे याद नहीं रहता।

लक्ष्मी कला वीथिका एवं आडोटोरियम की विशाल इमारत से सिग्रेट सुलगाता हुआ निगम बाहर टैरेस पर आ जाता है। मादाम खसन-वीस अब उसके सेटों को एक तजुर्बेकार समालोचक की तरह उपासनी को दिखाकर समझाएंगी और निगम को सस्ते दामों अनुबन्धित करने का श्रेय ग्रहण करेंगी।

मादाम खसनीय को निगम पूरे दस वर्षों से जानता है। खसनवीस नाम का कोई आदमी दिल्ली में उनके साथ कभी आया ही नहीं था। दिल्ली के हर कला केन्द्र में इस सरनेम की गूंज हैं पर उस आदमी की शक्ल

कोई नहीं जानता जिसका सरनेम ग्रहण कर एक औरत दिल्ली के हर ऊंचे तबके में जानी जाती है। विगत दस वर्षों में कम से कम पांच पुरुष मादाम खसनवीस से पूरी तरह जुड़कर अलहदा हो चुके हैं। सिर्फ जुड़ा रहा है तो खसनवीस सरनेम। काफी मुह लगा आदमी है खसनवीस का निगम, फिर भी कभी निगम ने उनका मजाक नहीं उड़ाया। कभी कभार चुटकी जरूर भर लेता है।

इन्हीं तीन सैटों में से एक में शकुंतला की कल्पना में डूबी हुई मुद्रा अंकित की थी। मादाम खसनवीस उसे निरंतर विभोर भाव से ताकते हुए अचानक बोल उठी थीं—"तूने शादी नहीं की निगम फिर किसकी मोहिनी इस चित्र में उतारी है? जरूर तेरी कोई गर्ल फ्रेंड होगी।"

निगम ने चुटकी भरी थी—"मादाम आपकी तरह मेरा नसीब कहां? पेट की जुगाड़ में औरत नहीं जुटा पाता हूं। प्लेटफार्म आर्टिस्ट के साथ कोई लड़की जुड़ती भी है तो अवधि होती है एक रात·· या चंद घंटे। ऐसा आदमी शादी कर भी ले तो जीवन कसैला बीतता है।"

मादाम खसनवीस चिढ़ी नहीं। अचानक ही गंभीर होके बोली थी—"ठीक कहते हो निगम। अपनी औरत या अपना पुरुष पाना आसान नहीं है। मिल भी जाते हैं तो जल्दी ही तेवर बदल जाते हैं। फिर साथ रहना मुशकिल हो जाता हैं। साथ रहते भी हैं तो एक दूसरे के लिए दोजख बनके। इससे बेहतर तो अकेले रहना है।"

तरस आ—गया था निगम को मादाम पर। जब तब हाथ आए पुरुष को बांधे रहने के लिए कितने अनूठे-अनूठे ढंगों से उन्हें निर्वस्त्र होना पड़ता था। इसी पीड़ा को सहज, आज भी लक्ष्मी कला वीथिका एवं ऑडो-टोरियम की बागडोर उनके हाथों में है अन्यथा बदलते हुए बोर्ड डाय-रेक्टरों के साथ मादाम खसनवीस भी बदल के कहीं और पहुंच गई होतीं। अपनी चालीस पार करती उम्र के मंथर होते कदमों के साथ स्वय को बदलने की कला में भी माहिर कर लिया था मादाम खसनवीस ने, अपने क्षितिज बदल लिए थे।

ताजदार मादाम खसनवीस को अपने लहजे में खब्बीस कह— जाता था। मादाम सुनके भी अनसुना कर देती थीं। निगम उसे लताड़ते हुए

समझाता था—"जो आदमी अपने अन्दर अपनी लाश का बोझ उठाए घूमता है उस पर पत्थर फेंकना ठीक नहीं है ताजदार। मादाम का दर्द समझने की कोशिश करो।" पर ताजदार की अपनी व्यथा थी···तेज खिसियाहट थी।

नर्म घास पर सिग्रेट पीते हुए निगम को गहरी तस्कीन महसूस हुई। टहलते हुए उत्तरी खण्ड में बनी खुली कैन्टीन के प्रांगण में उसने चारों तरफ नजर दौड़ाई। बी और सी ग्रेड के चित्रकार, अभिनेता, लेखक और संगीतज्ञ चारों तरफ बिखरे हुए थे। जिन्दगी और वक्त काटने के लिए इससे सस्ती और बहतरीन जगह कहां मिल सकती थी? निगम एक कुर्सी पर पसर जाता है। जनवरी की कुनकुनी धूप बड़ी प्यारी लगती है। कुर्सी के पीछे पिटूनिया के फूलों की क्यारी लहलहा रही थी।···मौसमी फूल! ऐसे ही अनगिनत कलाकार बरसाती मेंढ़क की तरह उभर कर अदृश्य हो जाते हैं।

रीता खोत कमर से नीचे बंधी चिपकी स्कर्ट पर चौलीकट ब्लाउज में बैठी चाय पी रही थी। साथ में नई लड़की है। निगम उसका नाम नहीं जानता है। अक्सर ही रीता को चाय पिलाती है। शायद कला-भवनों के आस-पास की कैन्टीनों और रेस्त्राओं का यह रिवाज है कि नए आर्टिस्ट पुरानों को चाय पिलाते हैं। मौका बे मौका आइसक्रीम खिला सफलता के नुस्खे दरियाफ्त करते हैं। छुटभईये पुराने आर्टिस्ट इन अव-सरों का पूरा फायदा उठाते हैं। अपने बौनेपन को भूल जाने की कोशिश के साथ गम्भीर मुद्रा में पुराने किस्से सुनाते हैं और हर किस्से के अंत में अपने पिटे व्यक्तित्व को उभारने के लिए एक झूठ बोलते हैं या किसी प्रसिद्ध व्यक्ति पर चोट करते हैं—वो है न विराट सूद! अरे पब्लिक जिसके लिए पागल रहती है। पर एक दिन मैंने झाड़ दिया—हीरो बन गए हो इसी से चल रहे हो···करेक्टर रोल तुम्हारा बाप भी नहीं कर सकता है।

निगम रीता खोत पर निगाह जमाए हुए नई सिग्रेट सुलगाता है। उसे ताजदार की याद आती है—कितना समझाया था उसे कि बेटा फिल्मों में चले जाओ···डिग्री तुम्हारे पास है, घर के भी अच्छे हो पर एक नहीं मानी उसने। खुद को बेच देंगे पर आर्ट से अलग नहीं होंगे। बड़ी

कड़वी सांस खींच कहा था ताजदार ने—बिरादर मर जाऊंगा। मैं सिर्फ औरत की आंखों में झांकते क्लोरोफार्म और सीने पर लदे डेरीफार्म के चित्र बनाकर नहीं जी सकता हूं, न गले दाल सरकारी अकादमी या आर्ट गैलरीज में···फुटपाथ पर तस्वीरें बेचूंगा···। पर फिल्म में नहीं जाऊंगा।

एक दिन मादाम खसनवीस को देख चीख उठा था—यही खब्बीस सूरत है जिसकी तराश में मधम-मधम मोमबत्ती की तरह जलकर कला मर जाती है। कलाकार मर जाता है क्योंकि अपनी जगह बनाने के लिए बिना हुज्जत पेटीकोट या पैंट उतारने पड़ते हैं और सरपरस्त अगर हिजड़ा हुआ तो उसके वजनी तलवे गोदी में रख कर सहलाने पड़ते हैं। यह औरत एक कब्रिस्तान है जहां कलाकार अपना कफन ओढ़े खुद आकर सो जाते हैं।

निगम ताजदार को खींचता हुआ बाहर ले आया था। राजामण्डी-हाउस के गोल आइलेंड पर दम तोड़ती आठ सड़कों पर बसें···ट्रक··· टैक्सियां और कारें निरंतर दौड़ रहीं थीं। ताजदार फिर कभी उधर नहीं आया।

कैन्टीन का बॉय रूपी लड़का हाथ में पोंछा लटका तीन बार निगम से चाय या काफी लाने के लिए पूछ कर चला गया था। आज निगम को ताजदार बेहद याद आ रहा था। अपने को थूक चाटने की प्रक्रिया से बचाने में ताजदार को दिल्ली से उखड़ना पड़ा। लापता होने से एक दिन पूर्व व्यथित कंठ से बोला था—यहां कला के बूते पर कोई नहीं जी सकता है निगम। यहां औरत अपनी जिस्म फरोशी से कायम रह सकती है और आदमी तलवे सहलाकर। यहां मुगलिया सल्तनत के चापलूसों की आत्माएं भटकती है। मैं गन्दे कफ को ओस की बूदों के रंग नहीं दे सकता हूं निगम और न ही अपनी आर्ट को कबाड़ के भाव बेच सकता हूं। मैं यहां से जा रहा हूं···क्योंकि मैं इस शहर से नफरत करता हूँ। यहा कला की स्मग-लिंग हो सकती है···उसका व्यापार हो सकता है पर कला ··कला बनके नहीं जी सकती है। यहां कोई भी शख्स अपनी सही सूरत को लेकर सड़क पर नहीं चल सकता है···। उसे जीने के लिए नकाब··तास्सुब और सियासत के सहारों की जरूरत रहती है।

प्रेमचन्द के गोदान के हीरो को स्टेज पर सूट-बूट में लाकर यहां नवकला का विकास होता है। निगम इस सत्य को जानता है पर चुप रहता है क्योंकि निगम आज भी खुद को कलाकार से ज्यादा मजदूर मानता है। पर ताजदार जन्म से कलाकार था। उसके लिए सब कुछ सह जाना असंभव था। पर ताजदार के जाने से निगम एकदम अकेला हो गया है।

अचानक कोहनी मार कर रीता खोत अपनी चूड़ियां खनकाकर निगम का ध्यान··· तन्द्रा भंग करती है। उसकी सहेली जा चुकी थी।

पैकिट से नई सिग्रेट निकालते हुए निगम पूछता है—"नए नाटक में एसाइनमेंट मिला ?"

"नहीं !" मुखरित रीता के चेहरे पर उदासी उतर आती है। सहेली द्वारा पिलाई गई चाय की गर्माहट उतर जाती है। छिलका हटते ही प्याज की गंध आंखों को नम कर देती है।

निगम टापिक बदलने की चेष्टा में पूछता है—"कुछ पीना है !"··· फिर चोरी-चोरी चोलीकट ब्लाउज से झांकते पुष्ट भाग से नजर हटाते हुए जोर से दो कैम्पा लाने की आवाज लगाता है।

निगम और ताजदार दोनों ही रीता खोत को अच्छी तरह पहचान गए थे। पंजाबी लड़कियों के खुले और कसे बदन को डाऊन करने की स्पर्धा में रीता खोत महाराष्ट्रीयन होकर भी भड़कीले कपड़े पहनती है पर छोटा रहना स्वीकर कर भी उसने अपनी अस्मिता बरकरार रखी है। ताजदार कहता था—'यह लड़की अन्दर से हीरा है और बाहर से कला का जंगल जिसमें वो खुद भटक गई है···निगम तुम इसे बचा सकते हो।

अचानक अन्दर से एक अपने पन से भर निगम कहता है—"कब तक कला के जंगल में कांटों पर भटकोगी रीता ! कोई सही आदमी पकड़ कर घर बसा लो।"

रीता एक झटका सा महसूस करती है। कहीं निगम व्यंग्य तो नहीं कर रहा है, पर पता कैसे चले ? निगम की आंखें तो क्षितिज में खोई हुई थीं। फिर भी जवाब तो देना ही—"तुम करोगे मुझसे शादी निगम !"

अचकचा उठता है निगम। चाहता है कि हां कह दे और बचाले

स्वयं को घनीभूत होती एकाकी शाम और रातों से। पर क्या पता कि रीता मजाक कर रही हो! रीता खोत सुन्दर है। उसमें एक कलाकार है पर पीछे कोई सहारा न होने से उसकी कला छोटे-छोटे किरदारों तक ही सीमित रह गई है। रीता सहज पुरानी और बासी हो गई है। सोचती थी कि मेहनत उसे एक दिन ऊपर उठा देगी पर इस शहर में हर साइज, हर प्रांत और हर मिजाज की लड़कियों की बहुतायत है। पूरी एक भीड़ दूसरे को धक्का देती रहती है। रीता जम न सकी···।···देह का सौदा भी उसे बरदाश्त नहीं था···इसीलिए काफी तेजी से नीचे फिसल रही है।

फिर भी रीता को जवाब देना था। निगम ने दार्शनिक तरीका अपनाया—'रीता! मैं और तुम जरूरतों से सूखते दो, एक से रास्ते हैं। मैं और तुम समान हो सकते हैं पर एक दूसरे के पूरक होने में असफल रहेंगे इसीलिए किसी काम के आदमी को पकड़ो।'

अन्दर से निगम ने महसूस किया था कि उसने रीता से झूट बोला है लेकिन किसी मजाक को सच्चाई के रूप में लेना भी तो सहज नहीं है।

खाली बोतल मेज पर रखते हुए रीता खोत उदास लहजे में कहती है —'स्टेज पर तो काम मिलता नहीं है—दूल्हा कहां से मिलेगा निगम। तुम्हीं कोई मुर्गा पकड़ लाओ तो भांवर डाल लूंगी।"

उठती हुई रीता को बैठाते हुए निगम कहता है—'एक बात कहूं मानोगी।'

'बको'—निगम की संजीदा आवाज को भी मजाक समझी। निगम बोला—"तुम भोपाल क्यों नहीं चली जाती हो? वहां ट्राई करो! आजकल भोपाल कला का तीर्थ है। भवन पर भवन उठ रहे हैं। कलाकारों को वहां सिर्फ पारिश्रमिक ही नहीं दिया जाता अपितु पुरस्कार भी मिलते हैं।"

रीता निगम को खोजती हुई दृष्टि से घूरती है—"एक शहर से ठुकराई फिगर को भोपाल स्वीकारेगा निगम! तुमने अभी कला के ढलान को समझा नहीं है।"

कहने के साथ रीता खोत रुकती नहीं है। शायद निगम की फूली जेब देख रीता खोत कुछ उधार मांगना चाहती है पर निगम उसे कांटों भरे

वार्तालाप में उलझाए रहा। शायद रीता खोत को नहीं मालूम था कि निगम के दिल में उसके लिए प्यार और इज्जतदार जगह है।
पार्श्व की टेबल पर बड़े सरमाएवाली पत्रिका का निचुड़ी हुई शक्ल सूरत का एक सह-संपादक अपने चमचों पर रौब गालिब कर रहा था—"ऐसा धांसू उपन्यास लिख रहा हूं कि हिन्दी जगत में तूफान आ जाएगा।"

चमचे दांत दिखाकर उत्साह प्रकट करते हैं। सह संपादक उन्हें उपदेश देता है—"अपनी अपनी कहानियां जैसा कि मैंने समझाया है उसी अनुसार ठीक कर अगले मंगलवार को यहीं ले आना। मैं यहीं मिलूंगा।"

चमचों से चाय नमकीन और मीठा गटकते हुए कला के मसीहाओं को निगम बखूबी पहचानता है। बड़े बापों के बेटों की एक हलकी फुलकी रचना अपनी पत्रिकाओं में छाप ये मसीहा काफी दिनों उसके पैसे पर ऐश करते हैं ··उन्हें अमर कलाकार बना देने का आश्वासन देते रहते हैं। यह जगह ही कुछ ऐसी है जहां लोग अपनी तारीफों के पुल बांधते हैं,···दूसरों की बुराई करते हैं और अपने गुणगान सुनते हैं या गुटबाजी कर षडयंत्र रचते हैं···दूसरों से अपना उल्लू सीधा करते हैं।

निगम को माया कुमारास्वामी की याद आती है। उस दिन राजदान कला केन्द्र की वीथिका के लिए क्लोपेट्रा का एक लम्बा चौड़ा पेन्टिंग बना रहा था। पता ही नहीं चला कि कुमारास्वामी कब आकर बैठ गई। कमीज की आस्तीन से पसीना पोछनें के उपरांत जब सिग्रेट सुलगाई तो स्टूल पर बैठे हुए पाया माया कुमारास्वामी को—'अरे आप!' चौंक कर निगम ने कहा था।

'हां! तुम्हारी कलाकृति को देख रही थी।'

'पसन्द आई!'

'हां! तुम वाकई कलाकार हो। मुझे तुम्हारी ही तलाश थी निगम।'

निगम प्रश्नात्मक दृष्टि डाल खामोश रहता है। माया कुमारास्वामी ठीक हिन्दुस्तानी लहजे में कहती है—'मैं साफ सीधी बात तुम्हारे सामने रखती हूं निगम। मुझे पब्लिसिटी चाहिए जिससे अपना मार्केट उठा सकूं। मेरे पास न तो ज्यादा रुपया है और न ही कोई मददगार।'

कभी इसी माया कुमारास्वामी ने सदर्न थियेटर्स से उसका कान्ट्रेक्ट

हटवा के आयंगर को दिलवा दिया था। निगम ने कहा था तो टूटी-फूटी हिन्दी में नखरे के साथ बोली थी—'तुम्हारे को क्यूं दें ! यह साउथ वाला थियेटर है।'

आज जब स्लम्प आया है तो माया कुमारास्वामी बदल गई है। निगम अपने मनोभावों को दबाकर पूछता है—'तो !'

'मुझसे कान्ट्रेक्ट कर लो। जब भी किसी औरत का चित्र बनाओ चेहरा मेरा भरो उसमें। हर चित्र पर पच्चास रुपये मुझसे लो।'

निगम गहरी निगाहों से निहारता रह गया था। माया कुमारास्वामी ने समझा था कि उसके रूप को अपने ध्यान में भर रहा है निगम का चित्रकार।

'कुतिया।' निगम ने आहिस्ते से कहा था। माया कुमारास्वामी के पूछने पर बोला था—'शुक्रिया।'

मायाकुमारास्वामी खुश खुश चली गयी थी।

दिनकर नाट्यशाला के गेट पर लगाने के लिए बड़े पेंटिंग में एक कुबड़ी औरत को बर्फीले पहाड़ पर चढ़ते हुए दिखाना था। निगम ने बहुत मेहनत की कि नाटक देखने वाले चेहरे से फौरन माया कुमारा स्वामी को पहचान लें। रात दस बजे निगम के दरवाजे पर थ्रीव्हीलर रूका था। अन्दर घुसते ही निगम के सीने पर माया कुमारास्वामी ने घूंसे बरसा दिए थे। पर निगम भी छोड़ने वाला नहीं था। कलाई मोड़ना शुरू किया तो दूसरे स्वतंत्र हाथ से फटाफट पच्चास रुपये निकालकर मेज पर रख दिए थे माया कुमारास्वामी ने। निगम ने कांट्रेक्ट ईमानदारी से पूरा किया था। माया ने आगे के लिए अनुबन्ध तोड़ दिया था।

मादाम खसनवीस को उसने पूरा किस्सा सुनाया ता मादाम हंसते-हंसते अचानक ही संजीदा हो गई—'तुम ने अच्छा नहीं किया उसका दिल दुखाकर। माया का केरियर स्लिप कर रहा है। यहां साउथ इण्डियन्स की क्या कम भीड़ है जो लड़कियां मिलने में दिक्कत हो ! स्लम्प की तरफ जाता हुआ आर्टिस्ट या तो फिजूल भौंकता है या दुम हिलाता है। उसके अन्दर प्रतिक्षण बर्फ पिघलती रहती है।'

निगम सकते के साथ मादाम के पेंन्टेड चेहरे पर उतर आई बदली को

पढ़ रहा था। वह जानता था कि इस स्लम्प से बचने के लिए मादाम ने ओवरटाईम लगा कर जिस्मफराशी की है···सिर्फ नाटक से अपने निष्काषन को रोकने के लिए। निगम मादाम के दर्द को समझता है दूसरे कलाकारों के चेहरों पर पहले सफेद बाल के साथ उभरे आतंक को पहचानता है। और निगम जब भी गमगीन होता है तो उसे ताजदार की याद आती है क्योंकि ताजदार एक नुकीले कांटे से उस दर्द का मुह भर देता था।

पैदल ही चल पड़ता है निगम। स्टैट्समैन बिल्डिग पार कर सिन्धिया हाउस के सामने से सीधा जनपथ पर पहुंच जाता है। जनपथ के बाजार मे अभी हलकी धूप के स्पर्शचिन्ह मौजूद थे। इक्का दुक्का दुकानो पर हलकी भीड़ थी। वह गुजरावालान ड्रिंक्स के एक पटरे पर अलमारीनुमा स्टाल के सामने रुक जाता है। यह दुकान कांता की है। कांता क्लाथ पेन्टिंग्स बेचती हैं। रात अलमारी में तालामार उसे अन्दर सरका देती है। कांता निगम को देख खिल उठती है···मधुर काजली दृष्टि से निरख पूछती है—'क्या लोगे निगम जी ?'

'क्यों आज काफी सेल कर डाली है क्या ?'

'हां कुछ तो हो गई। पर उससे क्या होता है !'

निगम अक्सर कांता को राह चलते हुए कागज पर नए डिजाईन या सीनरीज दे जाता है। कांता के हाथ में हुनर है। कांता का सांवला रंग उसके मोहक सलोने चेहरे पर फबता है। निगम उसे चाहने लगा था। एक दिन पूछ बैठा था—'मुझसे शादी करोगी कान्ता !'

कांता के चेहरे पर दीप्ति फिर शर्म और अन्त में एक कड़वी मुस्कराहट उतर आई थी। एक गहरी सांस खींचते हुए कहा था—'करना भी चाहूं तो संभव नहीं है निगम। हमारी जात को नहीं जानते··लड़कियां पेशा करें तो ऐतराज नहीं पर गैर जात में नहीं देंगे। जिसने कोशिश की उसे काट डाला। बेटी से शराब का पूरा खर्च बाप हथियाने में संकोच नहीं महसूस करता है पर कांता निगम से शादी कर ले यह मुमकिन नहीं है।'

निगम को गहरा आघात लगा था। उसे पूरी आशा थी कि कांता उसकी हो जाएगी। कांता के रूप में पागल बना देने वाली चिनगारी नहीं थी पर आदमी धीरे-धीरे प्यार कर सके ऐसा आकर्षण था।

निगम सिर झुकाए हुए आगे बढ़ा तो सामने आकर बोली थी—'मैं तुम्हारा अहित नहीं चाहती निगम। मैं तुम्हें चाहती हूं पर क्या करूं! जब चाहो कहीं तुम्हारे साथ चलकर खुद को सौंप दूंगी पर विवाह नहीं हो सकेगा। मेरा समर्पण रिश्ता नहीं बन सकता है।'

'ठीक है कान्ता! हम ऐसे ही मिलेंगे'—एक निश्वास के साथ निगम ने कहा था। अक्सर आकर निगम मिलता रहा। कभी अपने साथ जिस्म की भूख मिटाने नहीं ले गया। जिसे आदमी प्यार करता है उसके साथ अपवित्र रिश्ता कायम करना मुश्किल होता है। आज भी निगम कान्ता को चाहता है पर उसे पाने के इरादे उसमें नहीं रहे हैं।

निगम आगे बढ़ता है। शाम गहरी हो चुकी थी। संसद मार्ग की पीली बत्तियां शहर को पश्चिमी परिवेश अता कर रही थी। ए.आई.आर. और दूरदर्शन की इमारतों के बाहर खासी भीड़ थी। निगम इन क्षेत्रों में आवंटित कलाकारों की राजनीति को भी जानता है। खासकर नाटकों के प्रयोग पर हंसी आती है। मुद्दतों से चीखता ए. आई. आर. और टी. वी. लुभावने सेटों के बावजूद दोनों संघटन नाटक को गति नहीं दे सके हैं। बंबई से रिलीज होने वाले चन्द नाटक जिनमें फिल्मी कलाकारों की भरमार होती है लोकप्रिय हो जाते हैं। शायद आदमी अपनी जिन्दगी में इतना स्टेजी किरदार जीने लगा है कि ड्रामास से उसका लगाव बिल्कुल ही छूट गया है। एक चिप्पक स्कर्ट और चोलीकट ब्लाउज पहने लड़की को देख निगम को रीता की याद आती है। मधम गति से चलते हुए निगम उसी के बारे में सोचता रहता है। लगभग एक घंटा पापकार्न चबाता हुआ निगम अन्धेरे में डूबी बोट क्लब की झील में झांकता रहता है और फिर अचानक ही उठकर बस स्टाप पर आ खड़ा होता है। उसे लगता है कि अब वह अकेली जिन्दगी जी नहीं सकेगा। उसे एक साथी चाहिए। रीता जो आज स्टेज से थक गई है जरूर ही एक अच्छा साथी बन सकेगी।

आधे घंटे का सफर पूरा कर निगम सफ्दरजंग एनक्लेव के एक फ्लैट की सीढ़ी चढ़ बरसाती के सामने पहुंचता है। निगम दरवाजा खट-खटाता है।

"अन्दर आ जाओ···दरवाजा खुला है"—आवाज रीता की थी।

निगम अन्दर घुसता है। रीता बिस्तर में लेटी हुई थी। उसके चेहरे पर दर्द का गहरा पीला रंग फैला हुआ था। निगम को देख चौंक कर कहती है—"अरे तुम चित्रकार! इधर कैसे आ गए?"

'एक बात कहनी थी रीता।'

'क्यों, आज दोपहर में काफी कुछ तो कह चुके थे। कहीं कोई प्रोपोजल तो नहीं लाए हो?' रीता की निस्तेज आंखों में व्यंग्य था।

'लाया हूं!' निगम रीता की तरफ सीधे मुखातिब होकर कहता है।

अचानक ही रीता के चेहरे पर फैली पीली पर्त और गहरी हो जाती है। बिस्तर में छुपा जिस्म कांपता है—'कौन है वह!'

'मैं ··।···रीता मैं तुम्हें चाहता हूं।' रीता निगम के चेहरे को पढ़ती है।

फिर चौंक कर उठ बैठती है। अचानक ही एक गहरा दर्द उसे रोक लेता है—'यू आर लेट बाई टू आवर्स निगम···।··तुमने दो घंटे की देर कर दी।'

निगम स्तब्ध भाव से देखता है। रीता के चेहरे की पीलाई में कटु मुस्कराहट उभर आती है—'तुम्हारे दिल की सच्चाई को पहचान कर ही तुमसे छुपाऊंगी नहीं निगम। जिस तन की अस्मिता को बचाने में स्टेज पर बढ़ नहीं सकी···छोटी और बौनी हो गई उसी अस्मिता को सात महीने के किराए के तकाजे की एवज में दो घंटे पहले मकान मालिक को सौंप चुकी हूं।'

निगम स्वयं को गंधक के धुंए से घिरा पाता है। उसे लगता है कि गरीबी के जरासीम आदमी को अपनी समृद्धि बेचने पर भी मजबूर कर देते हैं। वह उभरकर कहना चाहता है—भूल जाओ जो हुआ रीता···। लेकिन तब तक रीता के स्वर उसके कानों में गूंजने लगे थे—'अब मैं बोझ से मुक्त हूं निगम···पवित्रता, अस्मत, औरत की सबसे बड़ी जंजीरें हैं। एक बार टूटीं तो पूरी आजादी मिल जाती है···। अब स्टेज पर उभरने में भी देर नहीं लगेगी। जिस्म की तुरुप फैंको और प्रसिद्धि की बाल्कनी में चढ़ जाओ।'

रीता मुक्त हंसी हंस रही थी—'पहली दफा हुआ इसलिए कष्ट महसूस कर रही हूं निगम ··बाद में तो पता भी नहीं चलेगा।'

निगम का दिल रोना चाहता है पर वह रीता के सपने पर आघात या आंसू के छींटे नहीं डालना चाहता है इसीलिए तेजी से बाहर निकलता है। बाहर अंधेरे में बार-बार ताजदार के वाक्य शक्ल ग्रहण कर सामने आ जाते हैं—यहां औरत जिस्म बेचकर आसानी से कलाकार बन सकती है और आदमी गन्दे तलवे चाट कर या सहला कर गौरव के शिखर पर पहुंच सकता है।

उन शब्दों के अवरोधों को काटता हुआ निगम पूछता है—ताजदार मैंने क्या किया कि मेरे लिए हर मिलती हुई शै अप्राप्य हो जाती है!

देशी शराब के ठेके से निकलते हुए उसे जवाब मिल जाता है—निगम तुम समय की एक सरहद हो जो प्यार की बस्ती तक पहुंचती है पर अन्दर नहीं पहुंच पाती है। सरहद आगे बढ़ती है तो बस्ती भी आगे बढ़ जाती है।

उर्ध्वमूलाकार बट वृक्ष की भांति अपनी जड़ों को आत्मा के जर्जर खण्डहर में समेट लड़खड़ाते हुए सड़क पर चल पड़ता है···घर की ओर···पर घर है कहां? शुतुरमुर्ग की तरह जहां सिर छुपालो वही घर है···वहीं आशियाना है।

●●

संकुल

अविनाश अखबार में बिछे विज्ञापनों पर नजर झुका लेता है। कनु की बात से हलका सा आघात लगा है उसे। कनु ने अनजाने ही अविनाश के पौरुषपर कड़ुवे तेल के छीटे बिखेर दिए थे जिस पर अविनाश यदि गौर करता तो फफोले उभर आते। कनु अभी भी बड़-बड़ा रही थी—"लोग तो अपनी बीबियों के लिए क्या नहीं करते हैं···।···शर्मा जी को देखो··· सुबह उठके दूध लाते हैं फिर चाय बनाते हैं तब उठती हैं शर्माइन···।"··· अविनाश को लगा कि कनु बहुत बदल गई है।

अविनाश खिसक आता है, जाली लगे बरामदे में अखबार खोल मूढ़े में धंस जाता है। आधे से अधिक अखबार में विज्ञापन ही विज्ञापन थे, मानो लोग हर चीज विज्ञापन देखकर ही खरीदते हों। पर ये बड़ी-बड़ी चीजें कितने लोग खरीदते हैं? शायद हजार में से एक खरीदता होगा और उसी के लिए होते हैं विज्ञापन। शेष लोग तो अपना सामान्य ज्ञान बढ़ाते हैं। उस जैसे परिवार बोनस मिलने पर और बर्थ डे पर तेल के विज्ञापनों को मैग्नीफाई करके पढ़ते हैं। हां, अगर बीबी जवान हुई तो ब्रेजयर्स के लेटेस्ट डिजाईन और कीमत भी ध्यान में रखते हैं। ये कलात्मक फर्नीचर, विडियो, फ्रिज, टी वी और लिनोलियम के विज्ञापन एक सामान्य ज्ञान और सतर्कता भर प्रदान करते हैं जिससे कभी किसी बड़े आदमी की कोठी में घुसो तो इन चीजों को देखकर चौंको नहीं। चौंके तो छोटे पड़ जाओगे। अस्तित्व के नाटेपन के साथ व्यक्तित्व भी ओछा हो जायगा।

कनु के गीत रिकार्ड करने के लिए कितना मन था। अपने लिए भी

एक इलेक्ट्रिक शेवर लाया था। पर वे दोनों लोकल माल-मेड इन यू० एस० ए० अर्थात् मेड इन उल्हास नगर सिंधी एसोसियेशन थे। अब कनु के गीत कैसेट्स में सील बन्द हैं। और बच्चे टेपरिकार्डर और शेवर से खेलते रहते हैं। दुकान में दुरुस्त कराने ले गया था तो दुकानदार ने कहा- साहब इन्हें रखिए। दो एक महीने चलके फिर टांय-टांय फिस्स हो जाएंगे। कोई स्टेण्डर्ड माल खरीदते तो सही भी किया जा सकता था। कनु शायद ठीक ही कहती है कि आम आदमी की जिन्दगी में विज्ञापन सपने बोते हैं और आदमी जब हार के थक जाता है तो विज्ञापन पर ही नहीं अपने पर भी अविश्वास करने लगता है। विज्ञापन जनित आकांक्षा ही नहीं, आदमी की हर आशा और स्वप्न अनायास ही एक धक्के से ताशमहल की भांति ढेर हो जाते हैं और दो टांग का आदमी लंगड़े की तरह गृहस्थी की गाड़ी खींचता है। कनु के उंगली उठाते ही वो चिढ़ जाता है आज। पर क्यों ? पहले तो ऐसा नहीं था।

कनु ठीक ही तो कहती है कि भागीरथ अपार्टमेन्ट्स के एक सौ आठ फ्लेट्स में उनका अपना फ्लेट ही सबसे फटीचर है। जो सोफा कभी आक-शन से खरीद मरम्मत करा बाहर के कमरे में रखा था अब मुंह फाड़ गया है। चादर से ढकने पर अब उसके घावों का रक्त तो छुप जाता है पर जख्मों के गढ्ढे नहीं छुपते हैं। ड्रेसिंग टेबुल का शीशा एक ऐसी तराश के साथ टूटा है कि बाकी बचा दर्पण एक ट्रपेजियम की भांति नजर आता है। खड़े हो के चेहरा देखने पर कभी नाक के ऊपर का हिस्सा गायब हो जाता है, कभी गर्दन से ऊपर का···। उस पर एक टांग की जगह लगी हैं गुम्मा ईंटें। लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं है कि बैंक में पडे तीन-चार हजार इन्हीं पर खर्च कर फोके हो जाएं और एमरजैंसी पड़ने पर दूसरों के सामने हाथ फैलाते रहें। अविनाश को लगा कि आर्थिक कमजोरी ने जहां कनु की संगमरमरी देह की हर तराश को स्थूल कर दिया है, उसकी हर अभिलाषा पर हैरिसन का ताला जड़ दिया है और उनके सपनों की सर्जरी कर हर अंग प्रत्यंग को थोड़ी ही दूर बहते समुद्र में फेंक दिया है। जिन्दगी दो टांगे होते हुए भी लंगड़ी हो गई है, जवानी में भी बुढ़ापा घिर आया है और कनु के उभार और खम मास के थांक ढेर में छुप गए हैं। बिना किसी

हादसे के अन्दर ही अन्दर एक आतंक खिचा रहता है। यहां तक कि बच्चे सीधे-सीधे कोई चीज मांगते नहीं है, अविश्वास के साथ आंखे मटकाते हुए पूछते हैं—पापा एक बात कहूं। क्या आप मेरी एक बात मान लेंगे। मीनार की ऊंचाई तक प्रतिष्ठित बाप का वकार धड़ाम से आत्महत्या कर लेता है। हां, कहने में गाल सूख जाते हैं। एक गहरी हीनता विश्वासों पर बलगम थूकती अन्दर ही अन्दर उतर जाती है।

भागीरथ अपार्टमेंट्स के इस फ्लैट के लिए लिया बीस हजार का लोन अभी आधे से ही कुछ ज्यादा चुका है। कम्पनी हर साल व्याज दर बढ़ा देती है। शादी के तुरन्त बाद व्यवस्थित होकर एक साथ रहने के लिए पूरी बीस हजार की पगड़ी देनी पड़ी थी। कनु तो पागल हो गई थी फ्लेट देखकर—सामने ही नारियल के झुड के झुंड वृक्षो के आगे समुद्र का नीला जल पछाड़ें मार रहा था। सुबह शाम सिन्धु पर थिरकती रवि-किरणों के अगणित छवि रूप देखने के लिए कनु बावली सी हो गई थी—"अविनाश ले लेते हैं फ्लैट···पगड़ी तो हर जगह देनी होगी, यहां कुछ ज्यादा है पर मुझे पसन्द है। हमारे लिए आईडियल रहेगी यह ऐकुमुडेशन। अपनी गृहस्थी जमा सकूंगी यहां।"

तन्मयता में सब कुछ भूलते हुए कनु ने कहा था—"समुद्र पर खेलती सूर्य की ये लड़ियां और चन्द्रप्रभा हमें सदैव भावुक बनाए रखेंगी। पूर्णिमा पर चौपाटी या जूहू नहीं भागना होगा। जीवन में यदि भावना है तभी हम जीवित हैं अन्यथा पत्थर।"

कनु की आंखों के कैनवास पर अनगिनत इन्द्रधनुष और एब्सट्रेक्ट सपने उभर आए थे। एक सम्मोहन हटता था तो दूसरा घिर आता था। कपोलों पर जिन्दगी के गुलाब रक्तिम हो उठे थे। कनु का रूप अविनाश को सम्मोहित किए जा रहा था, कनु की पारदर्शी आंखों का सपना अछोर क्षितिज से उड़ते मादक रजनी गंधा के अलहड़ झोके की तरह निरंतर करीब आता जा रहा था, इतना करीब कि कनु को लेके स्वयं को अविनाश अस्तित्वहीन महसूस कर रहा था। उसका जड़ और चेतन कनु की तराशों में विलुप्त हो रहा था। जूते के सोल घिस डाले अविनाश ने, मैनेजर के बंगले पर चक्कर लगा लगा के। पर एडवांस मिला कनु की मनुहार पर।

कनु के रूप और अनुनय को टाल न सका मैनेजर। अपने-अपने सामान लेके सिमट आए थे दोनों फ्लैट में। सामान था ही कितना दोनों के पास। बालकनी में सन्दूकों पर बैठ गए थे। कनु चाय बना लाई थी। समुद्र उतावला सा उठ-उठ के गिर रहा था मानो कनु के पास पहुंचने के लिए व्याकुल हो।

एक गहरी सांत्वना के साथ कनु ने कहा था—"बम्बई की चौबीस घण्टे पसीने से भरी जिन्दगी से बच गए हम तुम अविनाश।"

समुद्र में डूबता सूरज एकदम लाल हो गया था मानो कोई अहसास कनु के गालों पर शर्म के हस्ताक्षर कर गया हो। नारियल के वृक्षों को छेड़ते हवा के झोके कनु की देहगंध से मिल कर और भी शैतान होते जा रहे थे। अविनाश अपने बक्से से उठकर कनु के पास सट के बैठ गया था। कनु ने बांहों का हार पहना दिया था उसे।

कनु के आठ सौ, अपने हजार मिला कर तीन सौ की किस्त और दो सौ किराया अखरा नहीं अविनाश को। गांव भी सदैव की भांति सौ दो सौ भेज सका था। बाहर समुद्र और नारियल के झुंड थे और अन्दर कनु और प्यार। दफ्तर में भी एक ही हाल में बैठते थे। करनेटकर ने हंसी में कहा था—"कनु और अविनाश, अविनाश और कनु। बात एक ही है चाहे घर हो या दफ्तर।"

लेकिन ज्यादा दिनों एक साथ कहां बैठ पाए दोनों? कनु क्लर्क-कम रिसेप्शनिस्ट थी। जब रिसेप्शनिस्ट छुट्टी पर होती कनु वहां बैठती। विजिटर्स का तांता लगा रहता। जब तक बड़े साहब रहते रिसेपनिस्ट को रहना पड़ता। हां, देर तक बैठने का ओवरटाईम जरूर मिलता।

गुलियानी के रिजाईन करते ही कनु को हाल छोड़ना पड़ा मुस्तकिल तौर पर। अब कनु के हाथ इन्टरकाम पकड़े रहते या विजिटर स्लिप बनाते रहते। अजनबियों से घिरी रहती प्रतिपल। एक मशीन की भांति मुस्कराते रहना पड़ता। आकर सीधे बिस्तर पर गिरती, समुद्र उसे पुकारता रहता और वो आंखें मूदे रहती। अविनाश नीचे संतोषभुवन से पाव रोटी और मक्खन ले आता। मनुहार कर उसे खिलाता और खुद खाता। कनु अपने डैस्क पर मशीन की तरह व्यस्त रहती। अविनाश

विजिटर्स कोच के एक छोर पर पत्रिकाओं के पन्ने उलटता रहता। जब भी देखता कनु को व्यस्त पाता। कभी साढ़े छै, कभी सात बज जाते। कनु बस और लोकल में उसके कन्धे का सहारा लिए मौन बनी रहती।

पूर्णिमा आ के चली गई। समुद्र चांदनी से नहा-नहा के फिर सांवला हो गया पर कनु एक बार भी उधर नहीं गई। अविनाश कनु को छूता तो कनु करवट बदल लेती—"आज नहीं अविनाश कल,··· आज बहुत थकी हूं।" और अपने थके हाथ अविनाश की बांहों में डाल देती।

अविनाश अधिकांश विजिटर्स की लौलुप नजरों में कनु की देह के आकार झांकता। झुंझला उठता। मैनेजर से भी मिला था पर दो टूक जवाब मिला—"यह तो जॉब है। अभी परेशानी है। बाद में अभ्यस्त हो जाएगी कनु। आखिर किसी न किसी को बैठना ही होगा उस जगह। कम्पनी मोटी तनखाह पर खूबसूरत लड़कियों को रखती है···अगर भोंडी औद बदशक्ल लड़कियों से काम चलता तो दो-तीन सौ के लिए लाईन लग जाती।"

पहली बार कनु के रूप को लेकर उलझन महसूस की थी अविनाश ने। कनु का रूप उसका सुख और जायदाद था। दूसरों का दखल बरदास्त करना मुश्किल था। "रोजर्स एंड नथानी" का सिन्धी मालिक कनु से जबरदस्ती आते और जाते हाथ मिलाता। कनु से एक दिन कहा था—"मेरे यहां आ जाओ। पूरे दो हजार दूंगा।" कनु मुस्करा के रह गई थी।

अविनाश को लगा था कि यदि हर विजिटर इसी तरह कनु को ताकता हुआ हाथ मिलाता रहा तो कनु के हाथ की कोमलता लुप्त हो जाएगी और रंग नजर से स्याह हो जायगा। फिर मामला अभी हाथ तक है कल कोई मनचला और आगे बढ़ने की भी कोशिश कर सकता है···।··· अविनाश आगे सोच नहीं सका था, खुद ही कनु का इस्तीफा टाईप कर लाया था।

दोनों लंच में आमने-सामने बैठे तो कनु ने टिफिन खोलते हुए पूछा—"क्या हुआ अविनाश? बहुत सीरियस हो।" अविनाश तब चुप रहा था। कनु भी अपनी थकान के मध्य लुप्त होती पति-पत्नी के संबंधों की मुखरता को अहसास रही थी। उसे लगा था कि वो अविनाश को समय और सुख

दोनों मे वंचित करे हुए हैं। पर उसे लगा कि यह दौर अस्थाई है। चन्द दिनों में अभ्यस्तता हासिल होते ही वो इस थकान से मुक्त हो सकेगी। क्या वो खुद सिराहने दस्तक देते सिन्धु को नकार सकती है ? ये चन्द थकान भरे दिन शीघ्र ही अदृश्य हो जाएंगे और अविनाश के दर्पण तथा उसके रूप के मध्य उभरी धूल की परत साफ हो जायगी…। रात को जागते हुए क्षणों में मुस्कराते हुए अविनाश के सीने में शर्म छुपाने के साथ अपनत्व के आधार खोज सकेगी।

कौर टूंगते गम्भीर अविनाश को देख स्नेहप्लावित हो मजाक में पूछा था—"नौकरी छोड़ दूं ? पर फिर मैं कनु नहीं फकत मिसेज अविनाश रह जाऊंगी। मेरे और तुम्हारे मध्य से आठ घण्टे स्लिप कर जाएंगे। क्या सिर्फ पत्नी का प्रेम काफी रहेगा तुम्हें ?"

अविनाश की मुद्रा गम्भीर ही बनी रही। कनु की गुदगुदाने वाली कोशिश बेकार ही रह गई। अविनाश ने जेब से टाईप किया इस्तीफा निकाल कनु को पकड़ा दिया था—कनु सहम-सी गई थी। अविनाश ने कहा था—"कनु, शायद वर्तमान के सुख को मैं झेल नहीं पा रहा हूं। शायद मैंने इस दफ्तर के बारे में तुम्हें लेके पहले कभी नहीं सोचा था।"

कनु को लगा था कि अविनाश आवेश में है। आठ साल की उसकी मुस्तकिल नौकरी आठ-नौ सौ की एक मुस्त हर मास की आमदनी-क्या अविनाश समझ नहीं पा रहा है। उसने घबराते हुए कहा था—"अविनाश तुम उत्तेजित हो रहे हो। थोड़ा सोच लो। शायद पैसे की जरूरत को किसी और पदार्थ से आज के जमाने में बदला नहीं जा सकता है।"

पर अविनाश ने दृढ़ मुद्रा बनाते हुए कहा था कि अब दोनों दफ्तर में काम नहीं कर सकेंगे। कनु घर की शोभा है—वहीं प्रिया और पत्नी बनी रहेगी। कनु ने मर्माहत हो साईन कर दिए थे। वो अविनाश का दिल नहीं दुखा सकती थी। अविनाश ने कभी अवसर होते हुए भी उसे झंझोड़ कर निगलने की कोशिश नहीं की थी। अविनाश का प्यार सच्चा है कनु जानती थी।

उभरे हुए सीने के साथ, बाहों में बाहें डाले अविनाश बाहर निकला था। रिसेप्शन पर हिन्गोरानी बैठ चुकी थी। कनु को देख कई बिजिटर्स

उठ खड़े हुए किन्तु आज किसी से मिलाने के लिए कनु के हाथ खाली नहीं थे।

अविनाश के साथ मालाबार हिल पर भटकती कनु ने अपने अन्दर उठते भविष्य के भय को छुपा लिया था। कनु अपनी आधी जिन्दगी से आज अनायास ही कट गई थी। अविनाश एक स्वप्न में डूबा हुआ था कि कनु अब सिर्फ उसकी है। अनगिनत लालच भरी निगाहों की गुफा से वो अपने लिए कनु को बाहर निकाल लाया था। सूर्य की किरणें आंखों में गड़ेगी भी, यह बात भ्रमवश भूल गया था। चौपाटी से आती सड़क पर टैक्सी और कारों की एक बड़ी भीड़ रुक-रुक कर चल रही थी। ग्रांट रोड़ पर लोकल पकड़ने से पहले उसने एक बार फिर उस दिशा की ओर ताका जिधर उसके कदम रोज बढ़ते थे और अब जिधर जाना ही नहीं है। उसकी जिन्दगी का रूटीन ही नहीं कट के अलग हुआ है अपितु बम्बई का गहमागहमी से भरा एक हिस्सा भी उसकी जिन्दगी की भूगोल से एक छोटे जजीरे की भाँति सिन्धु में विलुप्त हो गया है।

सिन्धु तट पर शाम गुजर जाने के बाद भी बैठे रहे थे। अविनाश ने कई बार उठने के लिए कहना चाहा किन्तु हर बार कनु को सिन्धु पर धराशायी होते क्षितिज में उलझा हुआ पाया। क्या सोच रही है कनु ? अविनाश समझ नहीं पाया। शायद उभरे और उभरने वाले हर तल्ख को कनु स्याही सोख्ते की भांति जज्ब करने का योगाभ्यास कर रही थी।

अब अविनाश कनु को दरवाजे पर इस्तकबाल के लिए खडी पाता। कनु उसे देखती, मुस्कराती, फिर उसकी दृष्टि नारियल के झुरमुट को पार करती सिन्धु की ज्वारग्रसित लहरों में डूब जाती। अविनाश बाहों में समेट लेता। चन्द क्षणों के लिए उसकी बन्दी आतमा उभर आती और फिर अतल गहराई में डूब जाती। दक्षिण में सोई "रोज एण्ड" अर्थात "गुलाब का अन्त" सिमेट्री में गुलाबों की खुशबू फड़फड़ा के उसके पास पहुंच जाती और वो दौड़ कर रसोई में छौक लगाने चली जाती।

भरी दोपहर में पिटे-पिटे समुद्र को अकेले झाँकती रहती। चमकती हुई धप में कई पाल लगी किस्तियाँ दिखाई पडतीं···।·· उसे लगता कि एक दिन वो भी उनमे घूम सकेगी किन्तु चैकप के लिए अस्पताल के चक्कर तन

मन दोनों को कांटों पर घसीट लेते। दूसरा चारा ही कहां था? कनु अभाव की गहराई में अदृश्य होने लगी थी। ड्रेसिंग टेबिल के आगे खड़ी होती तो उभरे हुए पेंट के कर्व और पपोटों में फैले स्याह धब्बों को देख सिहर उठती। फिर शाम होते ही मुस्कराने का अभ्यास शुरू कर देती कि कहीं अविनाश के सामने उसकी आंखें रो न दें।

महीने की आखिरी दिनों की तारीखें दी थीं डाक्टर ने। अविनाश घबरा उठा था—"क्या होगा कनु? आफिस से तो लोन भी नहीं मिल सकता?"

कनु ने अपने को संजो कर कहा था—"अविनाश। सोचती हूं कि एबार्शन करा लूं। आजकल तो सरकारी अस्पताल भी जिम्मेदारी से ये काम करते हैं। इतनी तंगी में कैसे बच्चे पालेंगे।" तब अविनाश तमतमा उठा था।

अविनाश को लगा था कि कनु उसे गिरा के फिर नौकरी करना चाहती है। कहना चाहती है कि अविनाश तुम्हारी तनख्वाह से तो नर्क का निर्माण हो सकता है। गृहस्थी के सुख को बिना कनु की नौकरी के नहीं पा सकते हो। उसकी मुट्ठियां तन गयीं थी—कनु की करुणा भरी आंखें व्यर्थ ही पसरी रही थीं। अविनाश उठके बाथरूम की ओर चला गया था।

बदरंग अहसास को उस ने महसूस किया। बम्बई में किस चीज की कमी है। सुबह-शाम की टियूशन पकड़ लीं अविनाश ने। कनु अकुला उठी थी। शाम के लिए सज के बैठने का बहाना भी छूट गया। सुबह का निकला अविनाश रात गए आता। कनु से उतरी थकान अविनाश में व्याप्त हो गई। घर गूंगा हो गया। समुद्र की दहाड़ के साथ कनु घबरा के जाग जाती और अविनाश सोता रहता। अविनाश के साथ गुजरने वाली शामें लावारिस हो गईं और जिन्दगी एकाकीपन के ठूंठ के साथ उलझ के रह गई। सुबह उठते ही प्रश्न भरी आंखों से देखती और अविनाश की थकी आंखों में वह प्रश्न रास्ता भूल जाता। अविनाश तेजी से जीना उतरता चला जाता और कनु उर्मिला की तरह द्वार पर खड़ी रह जाती। कनु एकाकीपन के वीराने में संकुल तलाशती और फिर बिना कुछ किए थक के सोफे पर बैठ जाती। पूरे घर में सिर्फ टाईम पीस बोलती।

अस्पताल में अनायास ही कान में पड़े फिकरे उभर-उभर मन में तहलका मचा के उसे अन्दर ही अन्दर जर्जर कर जाते—"अरे यह वही है न।"

"क्या क्यूट ब्यूटी थी, और आज !"

"यार, नार्थ की लड़कियों की नस्ल ही ऐसी होती है। शादी से पहले गुलाब का फूल और शादी होते ही गोभी का फूल।"

एक ठहाका उभरता। कनु के तार-तार अन्दर ही अन्दर तड़क उठते। नहीं, वो कुछ नहीं कहेगी, कुछ नहीं सोचेगी। वो अविनाश के प्यार के आगे हर चीज. हर दुख छोटा मानेगी। कनु अपनी परछायी से पूंछती—क्या मैंने कोई गलती की ?

थक के घर लौटती। लगता कि तेज रफ्तार से दौड़ते बम्बई में वो ही नहीं उसका प्यार भी दूर छूट गया है। कनु का अन्तरमन अकुला उठता।

पार्श्व में सोते शिशु के पास से यंत्रचालित सी अविनाश के पास पहुंच जाती किन्तु वीकली होलीडे की भांति एक बिस्तर पर मिलन के क्षण, सेक्स की उत्तेजना के पल भी निश्चित हो गये थे। अविनाश कहता—"कनु अब तो सैटर्डे ही सूट करता हैं। इतवार को खूब देर से उठो···।·· और दिन तो···।"

कनु स्वयं कांप उठती छी···। अविनाश···। क्या कनु अब किसी दवाई की डोज रह गई है जिसे निश्चित अवधि के बाद गोली की तरह गटकना है ? क्या प्यार हमारे तुम्हारे मध्य से चुपचाप इस तरह से गुजर गया कि उसे हम भूल ही गये। अविनाश करवट बदल लेता। कनु रीतेपन की क्लोरोफार्म में बेहोश हो जाती—हताश।

"अंकुर जल्दी तैयार हो जा।"

"अर्चना। तेरा लंच मेज पर रखा है।"

कनु के दिन और रात दो नामों के उच्चारण में बीत जाते। फिर वो दो नाम भी दिन की तलहटी से खिसक गए। कनु फटे हुए कपड़ों को सीती, दांतों में सुई दबाए निमिष भर सोचती। कोई सपना अनायास ही वापस लौट के पोरों में चुभ जाता। कनु "सी" की आवाज के साथ इधर-उधर

देखती—कहीं अविनाश को तकलीफ तो नहीं हुई। कहीं उसकी नींद तो नहीं टूटी? अरे नहीं, अभी तो शाम भी नहीं हुई है अन्यथा बच्चे वापस आ गए होते।

कई बार लोगों ने सलाह दी—"कनु बहन तुम कुछ काम घर पर ही क्यों नहीं करतीं ?···सिन्धी परिवार तो···।···कोई बड़ी बनाता है... कोई पापड़।" कनु गंभीर हो जाती—"मेरे पति सिन्धी नहीं हैं।"

"पर तुम तो बिल्कुल बदल गईं···लगता ही नहीं कि कभी···।"

कनु दौड़ के बिस्तर में जा छुपती···उठके दर्पण से पूछती कि क्या प्यार केवल पैसे भर का मातहत है ? क्या प्यार के लिए मिटना होता है···?···नहीं। यदि एक भी कजर्वेटिव हुआ तो प्यार निष्कासित हो जाता है···। नीचे उतर "रोज एंड" सिमट्री में जा बैठती। गुलाब की टूटी हुई पंखुरियों से पूछती—तुम इस कब्रिस्तान में मेरी तरह किसी के प्यार में तो नहीं मिटी हो।

कनु बाहर बालकनी में बैठे अविनाश के पांवों के पास ही बैठ जाती है···। वो ही नारियल का झुरमुट और समुद्र सामने होते हैं किन्तु मन की तह पर कितनी रेत उभर आई है···। प्यार का सैंसिंग एलीमेंट ही अब पत्थर हो चुका है कि अहसास उसके वक्ष से गुजरते ही नहीं है। कनु को लगा कि अविनाश के साथ सड़क पर चलते-चलते शुरू में ही वह चौराहे पर रुक गई है। अविनाश कनु के खिचड़ी वालों में उंगली फंसा सहलाता है मानो उसने हंसते हुए दिनों वाली कनु को भुलाया नही है···। कनु पुनः रीतेपने में उभरे संकुल में चन्द क्षणों के लिए डूब जाना चाहती है। इतना डूबना चाहती है कि उभर न सके।

●●

किस्त दर किस्त

ऊर्ध्व भूल मधः शाखम् श्वत्थं प्राहुरव्ययम् !

वट वृक्ष की रचना विचित्र है। इसके आकार उद्‌गम और अन्त का पता चलना या आश्रय की थाह पाना असंभव है। वट वृक्ष को वैराग्य का प्रतीक माना है कृष्ण ने गीता में। तुम भी तो आसिता घर गृहस्थी और चाहों के मध्य, रागों में जीती रही हो और वीतराग में भी भोगती रही हो जीवन। अपने से कट के संबंध···वर्जनाएं !

खिड़की जिधर खुलती है उधर पुराना वट वृक्ष है। मोटी-मोटी शाखें ठीक खिड़की पर आच्छादित रहती हैं। सामने आकर दृष्टि का रास्ता रोक लेती हैं। उसके अंधेरे की शीतलता मे तुम अपना शून्य विलीन कर एकाकार हो जाती हो। स्वयं एक वट वृक्ष बन जाती हो। तुम्हारी शाखायें झुक कर जमीन के अन्दर धंस जाती हैं। उन्हें शाख कहें या जड़ ! तुम भी तो कुछ ऐसा ही श्लेष हो ! टुकड़ा-टुकड़ा टूटती हुई फिर भी साबुत। किरच-किरच चमकती हुई।

सुहागरात की हल्की खुश्नुमा रोशनी भी तुम्हें गड़ी थी। आलोक की घिसटती हुई एक टांग तुम्हारे भय और अवसाद को भी पैरेलाईज कर गई थी। आतंक···दर आतंक, अवसाद दर अवसाद···फिर अनुभूति बचती ही कहां है ? अपनी इच्छा और साध से परे होकर तटस्थ रूप में सोच सकीं थी—इसीलिए नहीं आया था देखने ! ···पर बाबू ने तो देखा था ! ···शायद दरिद्रता और विनय को परास्त करने के लिए बाबू को ट्रम्प कार्ड जरूरी था···और जरूरत के वक्त जो संभव हो जाए वही दुरुस्त है। बाबू को तो लड़की के लिए वर चाहिए था। अनगिनत जिस्मानी पुरजों

में से एक के खराब हो जाने से उसे वर की व्याख्या से तो स्खलित नहीं किया जा सकता है। फिर घर में अपनी गाड़ी है···टांगों से चलने की बात ही कहां उठती है। इसे बाबू की विलक्षणता ही माना गया होगा ! हां···आसिता ··तुम्हारे ईशान जरूर बदल गए। पति को सेज पर बिना कम्पोज खाए विदेह होकर अपनी अस्मिता सौंप अन्दर के पिघलते प्रवात सह गई। अछूती बनी रहीं। वट वृक्ष की तरह अपनी शाखों को झुका धरती में छुप गईं।

अन्दर ही अन्दर लावे से झुलसती हुई मायके पहुंच गई थीं जहां बड़े से खाली पड़े आंगन में गूलर का पुराना पेड़ है। गूलर·· जिसके अन्दर बिना वायु और बिना आंख खोले अनगिनत भुनगे बन्द रहते हैं। वह कैद ही उनका जीवन है। गूलर को चीरा कि उड़ पड़ते हैं भुनगे और धूल मिली हवा में मौन के साथ अदृश्य हो जाते हैं। बन्द रहना ही उनका जीवन है। ऐसे में कौन चाहेगा मुक्ति ! चाह का अर्थ है अवसाद···। पर तुमने चाहा था। चाहा था मानसिक और भौतिक कैद से छुटकारा। पर छूट कर क्या मिला ! जिन्दगी का एक सिरा अधूरा रह गया और दूसरा अजगर के मुंह में पहुंच गया। झूला टू एण्ड फ्रा मोशन लेता है। कभी इधर कभी उधर और तुम जिसे सिर्फ जिस्म की संज्ञा नहीं दी जा सकती है वह आसिता अपने अनुप्रस्थ संभालती रह जाती है।

"आसिता ! जरा दूध देख लीजो···कहीं जल न जाए !" ये अम्मा का स्वर था।

"आसिता ! तू तो बी ए कर रही है जरा राजेश को भी देख ! किताब से कोई सरोकार नहीं रहा है। डिस्को करता हुआ चलता है !" ये बाबू का स्वर था।

"स्कूल क्या जाऊं दीदी ? आज बीस हो गईं, बाबू फीस ही नहीं दे रहे हैं," राजेश भिनभिनाया था।

सब के सो जाने पर राजेश बीडी सुलगाता है। तुम देख कर भी चुप रहती हो। जब पानी बहेगा नहीं तो रुकेगा जरूर। रुकेगा तो बदबू फैलेगी ही। फिर राजेश क्या करे ?

सुबह अम्मा भिनभिनाई थी— "अरे माचिस तो खाली पड़ी है।"

"शाम को तो नई दी थी। क्या बीड़ी पीने लगी हो !" बाबू के स्वर में मजाक की ध्वनि नहीं थी। खीज थी···व्यंग्य था। निर्वस्त्र सा महसूस किया था बच्चों के सामने अम्मा ने'

तड़ाक से उत्तर देना चाहा था पर अचानक ही रुक गई थी। एक सदमा भरा पोस्टर अम्मा बाबू के मुंह पर छप गया था। खाने की देरी से कोहराम मच गया था। रानी, विधा और निशा चिचियाने लगी थीं। खामोश रहा बस राजेश। चुपचाप पैसे लेकर माचिस लाने चल दिया था। खामोशी एक महान दर्शन है···इसमें सब कुछ छुप जाता है, तुमने महसूस किया था।

घर की बैठक पर सफेदी के धुंधले कैनवास पर घर का तार्रुफ परिन्दों की बीट की तरह हर राहगीर का ध्यान आकर्षित करता था—रईसे आजम सरदारी लाल सक्सैना ! और इस तार्रुफ के ठीक नीचे बैठक के दरवाजे पर लगी तखती पढ़ती—बनवारीलाल बी. ए., एल. एल. बी., एडवोकेट ! ···ऊंचे दाम फीके पकवान !

अन्दर भूख बिलबिलाती रहती। मुंह पर टेप की तरह चिपकाने की कोशिश में खानदानी शजरा नाकाबिल रहता। बात बाहर तक निकल ही जाती। वैसे बात बाहर न जाए इस बात का समर्थन सब ही करते। घर का एक-एक सामान कबाड़ी साफ कर करीने से अपनी दुकान पर सजाकर बेचता। वकालत के नाम पर चलती थी जमानत कराने की दलाली···सात पेटों की भूख शांत करने का एकमात्र आधार। वह सुनकर तुम्हारी फीस माफ हो गयी थी। इकलौती टियूशन के रुपये अम्मा छुपा के अपने पास रख लेतीं। सब एक साथ दे देंगी···कहीं कोई लडकियों का पैसा भी खाए है। यही कहती थीं पर भूख के हाहाकार में आदर्श टटपूंजिया हो खील-खील हो जाता।

लोगों के फिकरे तुम्हारे रूप पर गुगली गेन्द की तरह उछल कपोलों पर आघात करते। तुम्हारे गाल गुस्से से और लाल हो जाते। कभी कोई विनय का नाम लेकर कहकहा लगाता। तुम सरपट चल पडती।

आंगन में पहुंचते ही चन्दिया पर गिरता गूलर तुम्हें खिजा देता। तुम गूलर को चीर देतीं। भुनगे तुम्हारी नाक को छूते हुए उड़ते और तुम

उसे फेंक देतीं । अन्दर इमली के चीए फोड़कर चौपड़ खेलती तीन बहनों पर तुम बरस पड़तीं तो मांगों का एक पूरा दस्ता तुम्हें थमा दिया जाता··· कापी, पैंसिल ··किताब···स्याही ! दीवार के साथ सटके तुम थकी सी बैठ जातीं । चोरी से विनय द्वारा लिखे पत्र को कई दिन लगातार पढ़तीं । लगता कि गूलर की घुटन से शीघ्र ही छुटकारा मिल जायेगा ।

अचानक ही यह स्वप्न भी टूटा था । हिस्सा-हिस्सा संजोया अरमान का एक अदद विश्वास स्याही की बोतल की तरह टूट तुम्हारे चेहरे पर काला पोत गया था—"आ गई महारानी ! कर आई प्रेम के नाटक का रिहर्सल ! बता···। ··कब से चल रही है किसी से तेरी !"

खिंची हुई चोटी के साथ तुम्हारे प्राण विकल हो उठे थे पर तुम विनय का नाम नहीं उगलती हो । छड़ी चिमटा फुकनी हर अस्त्र को झेलकर दांतों से होंट दबाये रहीं । आज महसूस करती हो कि साहस से काम लिया होता तो सीधे गूलर से मुक्ति पा सकती थीं ··बरगद की शाख नहीं बनना पड़ता जड़ नहीं बनना पड़ता ।

रात अपनी सूजी कलाई दिखाते हुए अम्मा फुसफुसाती हैं—"नाक कटा दी इसने तो । जैसे भी हो जल्दी पार लगाओ ।"

"सोचा था बी ए कर हाथ बंटाएगी । राजेश पढ़ लिख जाएगा··· मगर !" एक दीर्घ उच्छ्वास खींची थी बाबू ने । करवट ली तो बांस की खटिया चरमराई थी । जाड़े की रात में टूटी रुइ में रजाई मौसम से ज्यादा ठंडी लगी थी । चोटों से रिसता हुआ दर्द टूटे हुए कर्दम को सिर्फ आहों का दस्तावेज सौंप रहा था । सब सो चुके थे । तुम जाग रही थीं क्योंकि गूलर से वटवृक्ष की ओर स्थानान्तर का चक्र उसासें लेने लगा था ।

गुजिस्ता रईसी के किस्से और डींग, महंगाई पर लच्चर सरकार की नपुंसक ग्रपन और फिर आसिता के गुणों पर एक लम्बी तकरीर देने के बाद एडवोकेट बनवारीलाल एकदम खोखले हो गए थे । अन्दर ही अन्दर खील-खील हुए शीश महल के बजते कांच के टुकड़ों के स्वर से ध्यान बचाने के लिए जेब से निकाल पनामा सिग्रेट पीने लगे थे । अपनी कार-गुजारियों पर निर्दोषता का लेप लगाने की भी हिम्मत नहीं पड़ी क्योंकि उसके लिए न तो सरकार को और न ही समाज को दोषी ठहराया जा

सकता है। अपना पाप शायद सबको एक छोटी सी भूल लगता है जिसे छुपाने की हर कोशिश तहे दिल से की जाती है। पर छुपाकर आदमी स्वयं में कितना बौना हो जाता है, यह बात एडवोकेट बाबू की समझ में नहीं आ सकती थी। वकील अगर सच कबूल दे तो अपनी ही रोजी जाए। दरिद्रता आदमी को मूक पशु बना देती है।

शायद वे लोग फैसला करके ही आए थे—"हमें कुछ नहीं चाहिए भाई साहब ! एक-एक रुपये में शादी करेंगे। हमें लड़की सुन्दर और सुघड़ चाहिए थी भगवान का दिया हुआ सब कुछ है। आलोक की अपनी प्रेस है ··। संतोष ने अपनी एडवरटाइजिंग फर्म खोल रखी है। मोटर, स्कूटर सब है। एक बिन्नी है उसके लिए काफी कुछ छोड़ गये हैं उसके पापा।" अपनी सास की समझदारी तुम्हें अच्छी लगी थी। पर दयानत के पीछे एक घिसटती टांग का रहस्य भी होगा इसकी कल्पना नहीं कर सकीं थी।

उन लोगों ने शायद नाश्ता सिर्फ चखा भर था। मोटर चली गई तो अम्मा बाबू लौट आए देखा तो बच्चे नाश्ते पर टूटे हुए थे। आज उनकी इस हरकत पर गुस्सा नहीं आया। अगर न हो गई होती तो बिस्कुट और नमकीन आलमारी में अगली किस्त के लिए बन्द कर दिए जाते।

कायस्थों की बस्ती में बात की रूई सुलग उठी थी। विद्या बुआ खबर मिलते ही आ धमकी थीं—'अरे बनवारी ! वाह भईया तूने तो कमाल कर दिया। कोई अपनी भानजी के लिए भी ढूंढ। कायस्थों में ऐसे दिलेर हैं सोचा नहीं था। मैंने तो फटी झोली लिए सबको मांगते ही देखा। कलम मौधरी हो गई पर मुंशियाईत नहीं छूटी।'

एडवोकेट साहब ने सिग्रेट का गहरा कश खींच गद्‌गद् भाव से कहा था—"घबरा नहीं विद्या। जसोदा कोई पराई है।"

माथा ठोकते हुए बोली थीं विद्या बुआ—"सो तो है पर अभागिन है। मैं तो विनय के लिए भी सत्या का दरवाजा खटखटा आई पर वहां से भी जवाब मिल गया कि विनय ने तो एक लड़की पसन्द कर रखी हैं।"

बनवारी लाल बात में छुपा व्यंग्य समझ अपने नंगेपन को ढकने में लग गये थे—"मार झाड़ू सत्या को। घर में नहीं खाने को और सास कहे

नजराने को। कोई खानदान है उसका। नौकरी कर पढ़ाया है···अब इन-टर्नशिप कर मिलेगी यही आठ नौ सौ की नौकरी। कोई अपना नर्सिंग होम तो खोल नहीं लेगा। आज सरकारी मुलाजिम को कौन अपनी लड़की सौंपना चाहे। वो मजबूरी की बात दूसरी है।"

दाद खुजला के राहत सी महसूस की थी तुम्हारे बाबू ने। तुम्हारे लिए भी संकेत था लाल झण्डी का। जब नौकरी में गबन किया तो विनय के बाप से झूठी गवाही दिलवानी चाही थी पर उन्होंने मना कर दिया।

जमीन जायदाद बचे थे हथकड़ी से। विनय के पिता मर गये पर अदावत नहीं गयी है। मर गिर के अधेड़ उम्र में एल. एल. बी. कर वकालत शुरू की पर बाप का गुस्सा विनय पर बना हुआ है—"हरामी का बाप जरा सा झूट बोल देता तो लाखों की जायदाद अपने पास रहती।"

बहुत मैला लगा था उस रात तुम्हें आकाश। चांद नजर ही नहीं आया। धूमकेतु दिखाई देते रहे। बाबू के स्वर नश्तर की तरह चुभते रहे थे कोढ़ी से कर दूंगा पर विनय से नहीं।

अंतर्दाह से भरकर विनय को लम्बी चिट्ठी लिख विधा को फुसलाकर भेजा था पर चिट्ठी पहुंच कहां पाई! वो तो अम्मा की मुट्ठी से निकल राख हो गई। अम्मा बड़बड़ाई थी—कंजड़ी! पर तुम्हें कहां मालूम पड़ा। बारात वाले दिन विनय ने विधा के हाथ बधाई पत्र भेजा था तब कबूली विधा सारी रात ··कितना कोस रही थीं पहले विनय को।

ससुराल के नए शहर और नए मकान में आने से पूर्व डोली से बाहर विनय के द्वार पर फेंक दी तुमने अपनी संज्ञा · मिटा दी थी जिजीविषा!

आलोक चलता तो घिसटती टांग मामूली सा स्वर करती—खिस्स···। तुम्हें लगता कि कफन फाडा जा रहा हो। आलोक पूछता—"इतना मौन क्यों आसिता?" तुम उत्तर की जगह एक बेरंग हल्की मुस्कराह थमा देतीं। आलोक इसी से भर जाता। तुम तरसन में डूब जातीं। अपनी व्यथा भी भूल जातीं।

पर देवर संतोष और ननद त्रिन्नी इतनी आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे—"बताओ···बताना पड़ेगा। क्या राज है तुम्हारी खामोशी का भाभी?"

"लक्स साबुन !" एक बेहतरीन मजाक सौंप दिया। हंसते-हंसते लोटपोट हो गए थे। लोगों ने तुम्हारी खामोशी को आदत का नाम दे दिया। तुम्हें खिड़की पर खड़े हो वट वृक्ष में खो जाने का अवसर मिलने लगा। कई बार स्वयं को मथकर स्वयं से प्रश्न करतीं क्या अन्याय कर रही हूं ? क्यों अन्याय सह रही हू ! वंशी में विना श्वास का स्वर गूंगा रह जाता···उत्तर नहीं मिलता · तुम विदेह हो विनय के साथ भटकतीं और फिर सिर झुका के अदृश्य में खा जातीं। स्वयं एक वट वृक्ष बन जातीं। अपने पहले पुरुष को नारी भूल ही नहीं सकती है। उससे बिछुड़कर दूसरा पुरुष अनगिनत महानताओं के होते हुए भी सिर्फ निर्बाह साधन होता है।

किस्त दर किस्त टूटती तुम। सुबह एक हिस्सा चटखता तो दोपहर में दूहरा किरच-किरच हो जाता। शाम को उखड़ती हुई धूप की सीलन को निचोड़ती तो अधेरा गहरा हो जाता। वट वृक्ष की पतली टहनी तुम्हारे ब्लाउज में घुस चुभ उठती। रात आती तो तुम्हारी आत्मा उड़के बेताल की तरह बाहर कूद वट वृक्ष पर बैठ जाती और तुमसे प्रश्न करती— इंतजार कर रही हो आसिता ?·· तुम सात परतों के तले हंसती हुई अनुदर्श के मोहाने पर पहुंच कमल दल के मध्य विनय को पुकारतीं।

रोशनी बुझा के आलोक तुम्हारी तरफ बढ़ता। घिसटती टांग की लरज तुम्हारे जिस्म को कंपित कर उठती। तभी बेताल कहानी कहता — लंका में अशोक वाटिका में कैद थीं सीता। सारी की सारी राक्षसनियां थीं कुटिल। बस एक त्रिजटा थी जिसमें नेह भरा था। पर उससे क्या···? थी तो राक्षसी ही··सहृदय होने से क्या हुआ···उससे क्या राम का वियोग भूल सकती थी सीता ?

बेताल पूछता—बता कौन है त्रिजटा नहीं तो···! नहीं तो···पर तुम तो बेताल के प्रश्न से कहीं बहुत दूर होतीं।

सन्नाटे में अचानक ही सोग फैल गया था। पर शायद यह बात पहले से ही सबको मालूम थी। किसी ने सुझाया था कि शादी कर दो। शायद बहू के भाग्य से जिन्दगी मिल जाए। पर आलोक को जिन्दगी नहीं दी कैंसर ने। हां तुम्हें जरूर अवकाश मिल गया। घिसटती टांग के साथ उभरती दहशत और बिस्तर की सहयात्रा का आतंक छूट गया। हल्की

रुलाई आई थी तुम्हें···शायद लाश देखकर दहल उठीं थी और चीख पड़ी थीं अन्यथा आलोक का होना न होना तुम्हारे लिए मात्र एक शारीरिक विक्षेपण भर था। जीती कहां थीं तुम उसके साथ !

शायद आलोक की मौत की तारीख से सब लोग अच्छी तरह वाकिफ थे। पूरी तरह अनभिज्ञ था बस आलोक। सीने में सिर्फ दर्द की शिकायत करता रहा था। तुम इसीलिए साथ जाकर प्रेस का काम देखने लगीं थी। सास को अच्छा लगा था। इसीलिए तुम्हारे वैधव्य के लिए तुम्हें कोसा नहीं गया। बिना तन्ख्वाह के एक मनीजर क्या कम सुविधा है ! लेकिन तुम कोई आलोक के लिए काम करती रही थीं क्या ! नहीं···।···वटवृक्ष से हट कर स्वप्नाकांक्षा में निचुड़ते अवयवों को थोड़ा आराम देना चाहती थीं।

रोज रात बिल्ली रोती और तुम विनय के लिये चिन्तित हो उठती। बगल में खांसते पति का ख्याल ही नहीं आता। अब कभी-कभी रिक्त देखकर चौंक पड़ती हो। फिर खिड़की खोल वटवृक्ष की जमीन में धंसती जटाओं में विलीन हो पहुंच जाती हो। शाहजहां गार्डन जहां तालाब में कंवल ही कंवल लगे होते ··। चांद होता···विनय होता और अस्फुट स्वर होते। होश आने पर लगता कि तुम्हारा जिस्म बर्फ की सिल्ली है जिसके नीचे तुम्हारी आत्मा दब के कभी कठोर हो जाती है और कभी पसीज उठती है।

बिन्नी भाभी का दर्द समझ कभी विगलित हो चिपट उठती—"भाभी भूल जाओ सब कुछ। मम्मी के बाद तुम ही तो स्वामिनी हो इस घर की।" तुम्हारा बाईसवां बसंत अचानक ही गेरुआ पहन उठता। तुम्हारी आंखों में फैले सूने फलक को बिन्नी आलोक की स्मृति परिवेश मान लेती। लगता—बहुत दुख है भाभी को। एक पाला हुआ दुख तुम्हारे अन्दर जीते स्वप्न को दृष्टि ताप से बचा लेता ।

सास की फुसफुसाहट कान में पड़ गई थीं—"प्रेस देखती है। तेरे लिए अच्छा ही है। कौन बाल-बच्चा है पेट में जो हक मांगता। चार मीठे बोल बोलता रहा संतोष। उसका भी जी भरा रहेगा।"

तुम्हारे हाथ से दिशासूचक चुंबक छूट गया था। याम्योत्तर अदृश्य

हो गया था। पराएपन की एक कील जिस्म के ताबूत पर और ठुक गई थी। अजगर के पेट में साफ हवा के लिए तड़प उठी थीं। कागज पर कलम चलाते हुए तुमने लिखा था—मैं दोनों ओर से जलती मोमबत्ती हूं। ये कविता तुमने अंग्रेजी में पढ़ी थी पर अर्थ आज हिन्दी में अहसास रही थी।

प्रेस से लौटकर पलंग पर लेट गई थीं। अंधेरे से भरे कमरे में रण के कच्छार की गर्दभरी दोपहर महसूस कर रही थी···पर मुक्ति कहां है! ईसू भी सलीब पर चंद दिन टंगे रहे थे फिर अदृश्य हो गए थे। तथागत ने कहा था कि पीड़ा की अवधि सिर्फ तीन दिन होती है। पर यहां तो कलैन्डर बदल जाते हैं और दर्द दीवार की तरह खड़ा रहता है।

तुम चौंक कर उठ बैठती हो। बिन्नी पर्दा हटा के अचानक ही पलंग के पास खड़ी हो बोली थी—"भाभी ! कोई मिलने आया है ?"

"कौन है !" कुम मरियल स्वर में पूछती हो।

"कोई विनय है··डाक्टर विनय"बिन्नी बाल सहलाते हुए कहती है।

तुम्हारी जिज्ञासा तूफान से घिर जाती है। तुम फिर बिस्तर पर लेट जाती हो। बिन्नी चली जाती है। एक लम्बी उसांस के बाद स्वयं से बातें करती हो—क्यों आया है ? मना कर दूं क्या मिलने से ?···किस मुंह से मिल सकूंगी। विनय भी क्या अब वो विनय होगा···?···होगा भी तो क्या हुआ ? ··कुछ सोचना भी स्वार्थ है···पाप है। कहीं वो सपने तो वापस मांगने नहीं आया है !

स्वयं को संभाल नपे तुले कदम रखतीं तुम बैठक में आती हो। विनय खडा हो जाता है। उसे बैठने का इशारा कर स्वयं सामने कुर्सी पर बैठ जाती हो। मन चंचल हो उठता है—कितना करीब है वह ! ···या कितनी दूर···।···क्या दौड़कर रोने के लिए उससे लिपट पाना संभव है !

विनय तुम्हारे चेहरे पर उतरती धूप-छांव को सिर्फ पढ़ता रहता है। सन्नाटा एक जिल्द बन्द किताब की तरह अक्षर और शब्दों को रोके रहता है। मेज से एक पत्रिका उठाके उसका पन्ना पलटते हुए पूछती हो "कैसे हो विनय !" कितना बोझ था तुम्हारे प्रश्न में युग युग की निरर्थकता का बोध लिए पर विनय शायद तुम्हारे कंठस्वर के लिए भी आतुर था।

"ठीक हूं आसिता। कल ताजगंज से अमित का पत्र आया था उसी से

पता चला। आजकल यहीं लारेंस हास्पीटल में हूं। मां भी हैं।"

विनय बोलता रहता है और तुम अपने में खो जाती हो। पहली बार किसी के सीने में सिर छुपाकर रोने की इच्छा होती है। पर तुम जो चाहती हो वो क्या कभी पूरा होता है? पूरी की पूरी यात्रा तुम्हारी चाहत के रेशे-रेशे छांट कर, अलग कर हुई है।

तभी सास आकर बैठ जाती है। पूछती है—'बहू के मायके के हो भईया!'

"जी पड़ोसी रहा हूं बचपन से। अब यहीं आ गया हूं···।"

सास मनोयोग से सुनती है। घर मे कौन-कौन है, शादी हुई या नहीं। सब कुछ पूछ लेती हैं। तुम उठके चाय लाने चली जाती हो। तभी सास अन्दर आके कहती हैं—" अच्छा लड़का है बहू। तू वहीं बैठ विन्नी चाय दे जायेगी।"

बड़ी अजीब सी बात लगी तुम्हें। तुम्हारे मायके वालों को उन्होंने कभी कोसा नहीं पर तारीफ भी नहीं की। एक बार राजेश आया था तो उसकी जेब से गिरी सिग्रेट को उठाकर कहा था—"बाप पे जा रहा है तुम्हारा भईया।"

बाद में आलोक की उपस्थिति में जब तुमने सिग्रेटों को तोड़ा था तो उसकी महक सूंघ आलोक ने हंसते हुए कहा था—"गंजड़ी लगते हैं साले साहब"। तुमने उसी रात राजेश का बिस्तर बंधवा दिया था। बहुत शिकायत की थी घर पहुंचकर तुम्हारी उसने। बाबू के साथ राजेश के प्रति भी तुम्हारा दिल जहर से भर गया था।

विनय के जाने के बाद खाली कुर्सी को तुम अपलक ताकती रही थीं। कमरे में आकर तुमने पहली बार अपनी शक्ल पर गौर किया था। स्वयं को सुन्दर और मोहक पाकर तुमने विनय को भूल जाने की बहुत चेष्टा की थी क्योंकि अपनी दृष्टि में तुम एक बासी और भाग्यहीन शै थीं और अपने तिमिर को किसी और को सौंपना तुम्हें ठीक नहीं लग रहा था।

पर जो तुम चाहती हो कभी पूरा होता है? प्यार भरी झिड़की के साथ सास ने खदेड़ दिया था संतोष के साथ—'यह नहीं चलेगा बहू। दिल से बोझ हटाओ। न हो तो विनय के यहां हो आओ। न हुआ···रिश्तेदार···

कायस्थ तो है ही···मायके का तो है ही।'

अस्पताल के परिसर में छोटा सा बंगला था। सफेदे के पेड़··· गुलदाउदी, सूरजमुखी···मौलसिरी···जाबा कुसुम के दहकते हुए फूल··· जाने क्या-क्या लगा रखा था विनय ने।

विनय की मां के सीने में सिर छुपा फूट-फूट कर रोई थीं तुम। शायद यह रुदन वैधव्य पर था या उस रिक्त पर जो शादी के उपरांत विनय के अभाव में तुम जीती रही थीं और अब वह रिक्त जवान हो गया था।

संतोष को विनय और उसका घर पसन्द आया। आते ही संतोष ने विन्नी की चुटिया खींच कहा था—"तुझे निकालने का बन्दोबस्त कर रहा हूं मोटी।"

विन्नी के गालों पर रक्तिम कंवल उतर आए थे। सास भी चौड़ी गोटा लगी मुस्कराहट बिखेर रही थीं। तुम्हें अपने शून्य, तूफान का अन्देशा सताने लगा था। तुम्हें लगा था कि विनय जब-जब पराए रूप में आएगा तुम और दुखी हो जाओगी। फिर तुमने स्वयं को फटकारा था—मेरा क्या अधिकार कि मैं यह सब सोचूं? विनय कोई राम नहीं कि शिला को अहिल्या बना दे। सजीव कर दे वो सब जो मुर्झा गया है।

रात भर जागती रही थीं। प्रेस जाने से पूर्व विन्नी के साथ-साथ चाय पीते हुए पूछा था—"तुम्हें पसन्द है डाक्टर विनय?"

"धत्! मुझसे क्यों पूछती हो! मां से पूछो," विन्नी शरमा उठी थी। तुमने बिन्नी के लिए बात करने का निश्चय कर लिया था। इसीलिए प्रेस पहुंचते ही विनय को टेलीफोन कर दिया। पर तुम्हारा सोचा क्या कभी पूरा हुआ?

पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही आ गया विनय। देखकर चौंकते हुए तुमने कहा—"अरे! इतनी जल्दी आ गए!"

"हां आसिता! पहले भी कभी बुलाया होता तो देर नहीं करता। विधा की छोटी सी नादानी ने सब कुछ बिगाड़ दिया!" एक दीर्घ निश्वास छोड़कर विनय ने कहा।

"एक बात कहनी है विनय!" मन मंथन में उदित फैन को हटाते हुए तुमने कहा।

"कहो! शायद वही निकले जो मैं कहने आया हूं", विनय ने मुस्कराते हुए कहा पर तुम हड़बड़ा गई। तुम्हारी तटस्थता और संयम बिखर गए। पैंतरा बदल पूछा—"क्या कहने आए हो ?"

"यही कि आसिता नाम की लड़की को विनय अब भी प्यार करता है और उसी के इंतजार में रात-रात जागता है !" विनय ने अदृश्य क्षितिज में खोए हुए कहा।

तुम घबड़ा गई थीं - "नहीं विनय ! मेरी छोड़ो। भूली दास्तान को दास्तान ही रहने दो। मैंने तो बिन्नी की बात करने के लिए बुलाया था। बड़ी अच्छी लड़की है···शायद तुम्हें चाहने भी लगी है।"

तुम बोलतीं रहीं और विनय खड़ा हो गया—"दलाली का पेशा भी तुम्हें नहीं आया आसिता। इसलिए जो मैं कहूं करती रहो।"

मेज पर चपरासी कब चाय रख गया था पता ही न चला। चाय पर कत्थई पपड़ी जमने लगी थी। तुम्हारे होंट भी उसी तरह सूख रहे थे। गला शुष्क हो उठा था। तुम कुछ कहना चाह रही थीं। पर इससे पूर्व ही मेज पर लगे शीशे में तुम्हारी आकृति के बहुत पास विनय का चेहरा भी आ गया था।

दबी हुई स्प्रिंग जैसे अचानक ही खुलती है, एक झटके के साथ उठना चाहा तुमने। पर आंखों के आगे एक ब्लैंक फैल उठा था। उस शून्य में विनय का अस्तित्व खोया हुआ परिवेश तलाश रहा था। कतरा-कतरा इंतजार रिस रहा था। किस्त दर किस्त जमा की बेबसी तुम्हें बांध रही थी। मेज पर गुलदस्ते में सजे जावा कुसुम के दहकते हुए फूलों ने तुम दोनों की परछाईयों में रंग भर दिया था। तुम स्वयं को चिता के मध्य महसूस कर रही थीं··चिता जिससे अपनी अस्मिता की प्रमाणिकता देकर सीता बाहर निकली थीं।

●●

ग्लेशियर

परकोटेदार इमारत के अन्दर बाहर जगमगाती बत्तियां, आसपास कस्बाई शोर और मीलों तक इमारत के आगे फैला प्रूफ रेंज का जंगल, बगल में चलती कांटेदार फैंसिग···एक नई दुनिया बन गई है।

गोपाल देखता है···।···और कर भी क्या सकता है···?·· आंखों के अपरचर्स बाईनाक्यूलर की भांति फोकस कर लेते हैं हर वस्तु को, कानों के छेदों पर सुरसराता सन्नाटा अनायास ही धमाके से लुप्त हो जाता है। गोपाल स्कूल कम्पाऊंड में अपने क्वाटर की लघुवाटिका में बैठा सुनता है···।···सिर्फ सुनता ही नहीं अपितु अहसासता है— गनफायर और गोला फटने के उपरांत भागते हुए कदमों की पदचापें ··।·· सरकते हुए जिस्मों के साए उसके ऊपर से रेंगते हुए गुजरते हैं···।···ब्रास फियूज के टुकड़े, लोहे के फ्रेगमेंट्स से भरे हुए थैले संभाले भागते कदमों की धप-धप सहज ही उसके अन्दर एक आंतक पैदा करती।

अनायास ही एक तेज चीख मरघट का सृजन करती उभरती है···। ···एक जिस्म चीथड़ों में बदल जाता है। जिस्म के छोटे-छोटे टुकड़े पेड़ों के मोटे तनों से चिपक जाते हैं, चन्द बोटियां शाखों में उलझी नीचे ताकती है। साए चुपचाप फैंसिग से बाहर निकल जाते हैं···।···ब्रास के टुकड़ों की भूख दहशत में बदल जाती है। फिर प्रूफ ऐस्टिब्लिश्मेंट की जीप, पुलिस की गाड़ी थाने से, हस्पताल की एम्बुलैंस साईरन बजाती भागती।

गोपाल के बाइनाक्यूलर्स का फोकस अंतर्मुखी हो जाता है—क्यों बनते हैं ये तोप और गोले···? युद्ध क्यों होता है? आदमी को क्या सुख मिलता है एक-दूसरे को मिटाके···? गोपाल यकायक टैंस हो उठता है··।

उसे लगता कि इन सारे सवालों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है···।··· उसके मन के अन्दर अबूझ समीकरण की भांति सुलझती और उलझती मतसी को लेकर इस प्रूफरेंज का कोई ताल्लुक ही नहीं था·· । आस पास उगे वनस्पति की महुआ गंध बिना रोक-टोक उसके पास आती थी। तोपों से सनसनाते गोले और विस्फोट·· कहीं भी तो रूकावट पैदा नहीं करते थे। रूकावट थी उसके अन्दर···।···मतसी को लेकर वो यहां टिक नहीं सकता था। शायद खून-खच्चर हो जाता या भागना पड़ता। पर भाग कर जाता कहां? मां के कड़े और चेन बेच शिक्षा अधिकारी की मुट्ठी से बड़ी मुश्किल से निकला था ऐपाईन्टमेंट लैटर···मिडिल स्कूल की मास्टरी। मतसी को लेके भागता तो जाता कहां? ···जाता तो खाता क्या? इसी-लिए प्रेम को ढीला छोड़ दिया था। आंखें दूर तक मतसी का पीछा करतीं पर स्वयं गोपाल स्कूल कम्पाउंड में ही खड़ा रहता। अन्दर-ही-अन्दर प्यार को अहसासता, तड़प झेलता। उसका मन मतसी के साए से चिपका रहता। मतसी की भरी देह पर तहमद सी कसी किनारेदार धोती और सीने पर कचुंकी की भांति उसी धोती का पल्लू पुनः उतर आया था। पुनः गौड कन्या लगने लगी है।·· क्रिस्तानी सी तोलू को गोद में लिए सुमेर के साथ मायके आई थी, जगमग लाल बिन्दियों वाली कोटा सिल्क की साड़ी थी, ऊपर कोहनी तक का सफेद ब्लाऊज। पीछे ट्रंक लटकाए चल रहा था सुमेर। ठगा-सा देखता रहा था गोपाल। लगा था अनायास ही प्रूफ रेंज में ट्रेसर फायर किए गए हों, असंख्य जुगनू कतार से चल पड़े हों। फिर अपने चारों तरफ गहरा अंधेरा महसूस किया उसने। सारी ज्योति मतसी की देह पर सिमट गई थी। पर सुमेर···। रिक्त संपृक्त हो चुका था···। ···गोपाल को लगा कि बाहर एकदम उमस फैल गई है। अन्दर मूंढ़े पर धम्म से बैठके छत की कड़ियों में खो गया—क्या मतसी से उसने प्यार किया है? किया भी तो अब उसका सम्बन्ध कहां रहा? क्या मानसिक रूप से वो मतसी से जुदा नहीं हो सकता है? क्या उसे भूल नहीं सकता है? मतसी ने उसे रोका कब था? उसी ने रोटी से हार कर सन्धि में मतसी को अपने से दूर किया था किन्तु अपने सपनों से उसे हटा नही सका। शायद स्वप्न में मतसी और उसके मध्य जाति, शिक्षा और रोटी की रूकावट नहीं

आती है। धूप की सेंक से मुरझाए गुलदाऊदी के पौधों को पानी देता रहता है, शायद जाड़ों में फूल आएं। जीने के लिए सम्भावनाएं और आशाएं तो बटोरनी ही पड़ती हैं।

रेंज के जंगल की ओर द्रुत गति से बढ़ती मतसी की काया धूल के भूरे गुब्बार में खो जाती है। बांस, महुआ और पीलू के जंगलों में मतसी की देह गंध हर वृक्ष महसूस करेगा। मतसी कभी इधर जाएगी, कभी उधर जायेगी किन्तु हर वृक्ष अचल अपनी जगह खड़ा रहेगा। ठीक उसकी तरह स्कूल कम्पाउंड वॉल से घिरा दृष्टि से प्यार और प्यास जीता हुआ। संभावनाओं और आशंकाओं में वो डूबा रहेगा जब तक मतसी गहरी शाम के अंधेरे में झोला लटकाए सतर्क सबसे बचती निकलती न दिखाई दे जायेगी। पर कब तक ? कब तक जाती और लौटती रहेगी मतसी ? किसी दिन धातु का मोह उसे भी चीर के रुई की भांति बिखरा देगा। जाने कितनी कलाईयां अपनी कांच की चूड़ियों का मोह तोड़ इसी रास्ते पर लग गई हैं। अनायास ही लोहे का गुब्बारा सिंहनाद करता फट पड़ता है···जंगल के पेड़ और उनके साए कांप उठते हैं · परिन्दे चीत्कार करते हैं। प्रूफ ऐस्टिब्लिशमेंट की इमारत से हार्न देती भागती है जीप।·· ऊंचे टेरेस से फ्लेश लाईट घूमती है पर साए ध्वनि की गति से भी तेज हो बीन डालते हैं धातु के टुकड़े···जीप पहुंचने तक मैदान खाली होता है।

माईक से फिर एनाउन्समेंट होता है। आवजरवेशन पोस्ट से वायरलैस बात करता है। पीतल के लालच में जान जोखिम में न डालने की प्रार्थना गूंजती है जो अन्त में धमकी में बदल जाती है पर साए और सतर्क हो जाते हैं। जिस्म तनों से सट जाते हैं। कई किलोमीटर लम्बा चौड़ा रेंज का जंगल गूंगे की तरह सुनता है और आसमान अन्धे की तरह ताकता है। पेड़ों के तनों से चिपके साए अपना सारा ध्यान आंखों में उतार लेते हैं, अभी गोला ऊपर फटेगा। शायद सिर्फ फ्यूज टेस्टिंग हो, गोला नहीं फटेगा···। कभी विस्फोट, कभी धप्प की आवाज होती है, चील की तरह साए बाहर झपटते हैं। अनायास ही गोले को खींचते ही धड़ाम के स्वर के साथ चन्द सायों के जिस्म लोथड़ों के रूप में ऊपर नीचे उड़ते हैं। मास मज्जा पेड़ों से चिपक जाता है। बाहर थैले लिए खड़ी टोली सरसराती है।

कौन गया आज ? चिश्ती···?···वाला···? सुधनी···? अन्दर से चन्द कदम दौड़ते हुए बाहर निकलते हैं··चेहरों पर बदहवासी होती है···। फिर सब टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों से गांव की तरफ भागते हैं···। भूल जाते हैं कि हमेशा-हमेशा के लिए किसी को पीछे छोड़ आए हैं। सात मील दूरी पर खड़ा सतपुड़ा दूर से ताकता है ।

औरतें बाहर आ खड़ी होती हैं । लौटे हुए लोग अपनी-अपनी औरतों के साथ अन्दर चले जाते हैं । बाहर खड़ी रह जाती हैं वो जिनका पति—जिनका बेटा पीतल के टुकड़ों के चक्रघात में स्वयं छीछड़ों में बदलकर जंगल में पड़ा रह गया है।

फायरिंग बन्द हो जाती है, सिक्योरिटी की जीप भागती है···फून खनखना उठते हैं ? पान की दुकान पर खड़ा कोई पूछ उठता है—क्या हुआ ?·· हुआ क्या ?

सुबह कसबे का एक मात्र अखबार जलजला सुर्खियों में खबर छापता है। रेंज से बोटियां और गोश्त बटोर कर ऐम्बुलैंस और जीप वापस लौटती है। गांव में उतरती है पुलिस। भौंपू लगाके सिपाही आवाज लगाता है। लोग घरों से बाहर निकल पुलिस जीप के चारों ओर खड़े हो जाते हैं। सब कुछ जानते हुए भी जुबान पर ताले लगे रहते हैं। सिसकियों के बोझ से हिलते झोंपड़े भी गूंगे हो जाते हैं। भोंपू बोल-बोल के खामोश हो जाता है···अंधेरा गांव को काली चादर से ढक लेता है। थानेदार वजनी गालियां देता जीप में बैठ जाता है। लोग अब विधवाओं को सांत्वना देने के लिए एक ओर बढ़ते हैं।

आधी रात में एक टैम्पू हार्न देता है। टार्च जलाके कोई तराजू से धातु के टुकड़ों को तोलता है बस आज इतना ही? उतरे हुए चेहरे फुसफुसाते हैं···आज कालू और सालिग···।

गोला-गट्टा बीनने में···तुम स्साले···। अरे अब तक तो तुम्हें माहिर हो जाना चाहिए था। पर तुम गंवार के गंवार रहे···।···चालीस रुपये का पीतल आठ रुपये में बिक जाता है···। ड्राईवर सिग्रेट सुलगाते हुए खींझता हैं—बहन···। बेकार पेट्रोल फुकवाया···। अठन्नी भी नही बनेगी।

नेपाम गोलों का प्रूफ यहां नहीं होता है, गोपाल जानता है किन्तु

मतसी जब जंगल की रेंज में होती वो कसेले विषाक्त धुंए को महसूस करता···। अन्दर ग्लेशियर की भांति पिघलने लगता। लेजर बीम की भांति उसकी आंखें एक ही रास्ते पर जम जातीं। बहुत सारी शब्दावली जो जिन्दगी से कोई रिश्ता नहीं रखती है उसने सीखली है···। उसका इनसे कोई संबंध नहीं हैं पर गोपाल उनके नाम जानता है जैसे कि मतसी की पायल के हर घुंघरू से ऐसी ही कोई वस्तु बंधी थी जो आज विस्फोटक हो गई है ··।···काश मतसी रुक जाए···।

लेकिन मौत कदमों को रोक नहीं पाती है। कदम तेजी से बढ़ते···। साए चुसती से सरकते·· चार मरदाने पावों की जगह जनाने पांव जुड़ जाते···।···ऐसा क्यों होता है ? ये जरूरत है या विदेह होने की चेष्टा···? गोपाल पिछले बीस पच्चीस वर्ष का इतिहास आंखों के सामने बिछा लेता है···।···स्वयं से प्रश्न करता है और स्वयं ही उत्तर खोजता है···।··· आसपास की पथरीली और काली मिट्टी कभी समतल और कभी नीचे गहरी वादी में उतर जाती हैं···।···चारों तरफ बांस, महुआ पीलू के वृक्ष घुमड़ पड़ते हैं। समतल भूमि पर बड़े किसान छोटे किसानों के खेत निगलते गए···।छोटा किसान धीरे-धीरे मजदूर बन गया, नौकर बन गया··· उनके झोंपड़े सिमटने लगे···।···अन्दर ही अन्दर एक हूक पिघलती महसूस करते···। बड़े लम्बे फार्मों में अपने छोटे-छोटे खेतों के निशानों को सहलाते, रात महुआ उबालते···।··· अन्तड़ियां चरचराती। निकल आया नया जरिया···जंगल की रेंज से धातु के टुकड़े बीनने का। रोटी के साथ गुलाब···सौंफी ··या महुआ का प्रबंध भी हो जाता। रात के सन्नाटे में तराज़ू लिए टैम्पू आने लगा धातु खरीदने·· टार्च की रोशनी में ढाई किलो धातु दो किलो में आधे दाम पर ले जाता। तोपें गरजने लगीं··· आकाश में स्टार सैल्स का प्रकाश उभरने लगा···रात के अन्धकार में भी जब रोशनी जगमगा उठती तो उड़ते हुए चमगादड़ वृक्षों पर जा लटकते।···अभिमन्यू की भांति जंगल के कौरव को परास्त करने लोग निकलते...। स्टेशन पर उतरे एम्यूनिशन के बक्सों को देख गोलों की नस्ल का पता लगा लेते। पर मतसी ? उसे इससे क्या मतलब था ? गोपाल उसे निहारता···।···मतसी के कदमों के नीचे गोंद चिपक जाता

···।···गोपाल के चेहरे पर पसीना उतर आता···।·· मतसी अपने पैरों में नीचे सूखे गोंद की पपड़ी महसूस करती, आगे बढ़ जाती···।···दूर होने पर भी गोपाल को लगता है कि मतसी की गर्म श्वास उसे छू गई है, एक दीर्घ निश्वास उसकी छाती टटोलती फूट पड़ती···गर मतसी और वो पास होते···श्वासें कितनी गर्म होतीं···एकवंशी होती—एक श्वास··और जीवन ? जीवन सरगम होता···। ··क्षितिज से उतरती निगाह, गुम सुम गांव को कोहरे के नीचे दबा जाती···। काश वो एक फौजी होता तो मतसी को उस जंगल में नहीं घुसने देता···। पर अभी भी वो उसे रोक सकता है···। ··पर रोके कैसे ?

पर उस दिन गांव की शाम के नीचे पालीथीन वेग की तरह सील बंद मौन फूट गया। सुमेर के साथ तोलू को संभाले मतसी मंथर गति से उसके सामने से गुजर गई थी। गोपाल ने बीती हुई घनी शाम को अपनी हथेलियों में अहसासा था। मतसी की एक हथेली अपने दोनों हाथों में थाम ली थी उसने। मतसी गोपाल की आवाज का इन्तजार कर रही थीं। किन्तु निगाहों का पैन्डोलम सिर्फ टू एण्ड फ्रो मोशन करता रहा··संप्रेषण उभरता और मरता रहा···। हर क्षण एक स्वर्ग का निर्माण कर धराशायी होता रहा···। मतसी खीज उठी थी क्यों खटते हो मास्टर सोच-सोच के ·। · जो तुम कर नहीं सकते वो हो कैसे सकता है ?

मतसी की छाया एक हारे हुए सिपाही की भांति सिर झुकाए चली गई थी। गोपाल के समर्पित क्षितिज झुके के झुके रह गये थे। उतरते ग्रीष्म में खिले गुलमेहन्दी के पौधों को उसने उखाड़ फेका था। किसलिए···? यह आक्रोश किस पर था ··। आक्रोश था या लाचारी ··? जिन्दगी हैंगर पर लटके पुराने वस्त्र की भांति निरर्थक लगी थी। लगा था ··जो उतर गया, उसे पुनः पहना नहीं जा सकता है। करीब नहीं लाया जा सकता है।

प्यार चमचमाते जूते में उभर आई कील की भांति चुमन दे रहा था जिसे पहन कर वो एक आलीशान होटल की पार्टी में आ गया था जहां न वो उसे उतार सकता था और न सिसक सकता था। उसे लगा कि मतसी को देखते रहने की चाह में वह खुद जलती हुई स्टार कैन्डिल की भाँति

पराशूट से लटका हुआ है। जल रहा है और फिर बुझ जाना है।

शादी के पूरे दो साल बाद मतसी लौटी थी मायके.. ।...बहुत दूर जबलपुर में थी उन दिनों, साथ में एक वर्ष का तोलू था। पैंट पर बिना मौजे का बूट पहने सुमेर शर्माता हुआ चल रहा था। मतसी के विवाह के दिन और रात वो बंजर टीले पर बैठा रहा था। अपनी नपुंसकता और रोटी के भय की एवज कंकड़ उठा टीले से नीचे फेंकता रहा था। मतसी आई तो स्तम्भित रह गया। सुप्त तार फिर झनझना उठे। मतसी के साथ सुमेर को सह नहीं पा रहे थे सपने। किन्तु उसने मतसी के जीवन में सूनापन कभी नहीं चाहा। तीन दिन की जगह पूरे साल में सुमेर गांव नहीं छोड़ सका। असलम और धोंधू के साथ देशी शराब का जो चस्का लगा तो पाँव पीतल के टुकड़े और पैराशट बीनने के लिए दौड़ने लगे। गोपाल ने मतसी से कहा था तो वो बंजर टीले की ओर निरन्तर ताकती रही। वीरान टीले और मतसी की आंखों के सूने आकाश दोनों ही एक ही भांति भाषाहीन थे। बीते कल का उधार पीतल बेच उतार के कल की उधारी पर शराब पीकर आता सुमेर···मतसी की सिसकियां शराब के नशे में सुनाई ही नहीं पड़तीं।

गोपाल ने जाड़ा उतरते हीं गुलदाऊदी उखाड़ केना, और कैरियंथम की पौधें लगा दी थीं। शांम से रात तक वो लम्बी चौड़ी क्यारियों को सींचता रहता। मतसी को बंजर टीले पर खड़ा पाता जहां से मतसी कभी उसकी बगिया की ओर देखती रहती और कभी जंगल की ओर जहां सुमेर पीतल बीनने गया होता।

पर उस दिन उतरते अंधियारे में विस्फोट के साथ उभरा शोर मरा नहीं। वो शोर गांव में उतर आया। गोपाल स्वयं को स्कूल तक रोक नहीं सका। गांव में पहुंच गया। मतसी उसकी उंगलियां पकड़ झूल उठी थी—"उसे बचा लो मास्टर। उसे बचा लो।"

पर गोपाल किसको बचाता? धरती से समेटे गये लोथड़ों को सीकर आदमी नहीं बनाया जा सकता है···। थानेदार ने वजनी गाली दी तो गोपाल कांप उठा···। फिर स्थिर हो···थानेदार से इसरार कर उसने पंचनामा करवा दिया। लाश के रूप में लोथड़े जिन्हें पहले हर विधवा

नकारती रही थी, मतसी ने स्वीकार कर लिए। तोलू का हाथ पकड़ मतसी के बाप ने दाह किया।

सुबह मतसी के घर गया था।··असलम मास्टर को देख मुस्कराया था, पर आज गोपाल को किसी का भय नहीं था। किन्तु मतसी ने लौटा दिया—"तुमसे कुछ नहीं ले सकती मास्टर। देने वाला चला गया तो तुमसे क्यों मांगू? जब वक्त था तो कलाई भी नहीं थाम सके। अब तुम जाओ।"

गोपाल लौट आया था। मतसी ने गलत नहीं कहा था। आज भी मतसी को अपना लेने वाली सामर्थ्य उसमें कहां है? सपाट क्षितिज पर एक चमक उभर के दब जाती है। गनफाइरिंग की सनसनाहटें दिशाओं को कंपकपाहट थमा देती हैं···।···गोपाल जंगल की ओर ताकता है··।··· मतसी अभी तक नहीं लौटी है। कई साए दूर से गुजरते हैं। गोपाल मतसी को उनमें तलाशता है। शायद थोड़ी देर और लगेगी उसे लौटने में। कहीं···वो···फंस न जाए? पर वो कर क्या सकता है? आशा के साथ उसका ग्लेशियर पिघलता है और आशंका के साथ जम जाता है।

दूर से आती अकेली मतसी को देखता है··।···मतसी जानती है कि गोपाल उसे देख रहा होगा। वो एक क्षण के लिए रुक जाती है। दोनों के मध्य फैली दूरी में दोनों ओर से निश्वासें प्रवाहित होती हैं। मतसी को लगता है कि आज गोपाल उसे पुकार उठेगा और सारी वर्जनायें तोड़ वो उसकी बाहों में चली जाएगी। गोपाल को लगता है कि मतसी दौड़ पड़ेगी, फिर वो उसे लेकर कहीं दूर चला जाएगा। लेकिन दोनों ही बातें नहीं होती हैं। आधार बने रहते हैं, आशाएं जनमती रहती हैं और आशंकाएं गहरी होती रहती हैं। गोपाल का ग्लेशियर पिघलता है, फिर जमता है, फिर पिघलता है···अन्तहीन···क्रम···।

●●

साक्षात्कार

आगरा कैण्ट से कोई छह किलोमीटर और आगरा फोर्ट से यही कोई चार किलोमीटर, फूल सैयद से सीधे डामर की सड़क पर चले जाइए। पहले इस सड़क पर वे ही जाते थे जिन्हें काली पल्टन अर्थात् पैराशूट रेजीमेंट की ओर जाना होता था। अब यह सड़क हट कर एक-दूसरी सड़क पर भी ले जाती है जिस पर सैकड़ों ढाबे, कलारी की दुकानें, आगरा की दस्तकारी के शो-रूम और दो फाइव-स्टार होटल, मुगल शेराटन एवं हाली डेइन हैं। पास ही मुमताज और अन्य होटल उभर आए हैं। एक बार फिर सिनेमा घर के बगल से नीचे उतर पाकटोला लांघते हुए आप सीधे बसई पहुंच जाएंगे। कभी इस पाकटोले में मुगल दरबार के सलाहकार एवं कलम के कारीगर कायस्थों के परिवार रहते थे। वक्त ने ऐसा पलटा खाया कि कलम जो उनकी मौरूसी-बपौती थी, आज सब के हाथ में आ गयी और रोटी की खोज में तीन चौथाई से ज्यादा परिवार अपनी हवेलियां छोड़ भाग गये···।···अब वहां नालन्दा की तरह बेहिसाब खण्डहर फैले हुए हैं। इसी पाकटोले के दोनों ओर से जाती है बसई की सड़क···।···बसई के भी दो हिस्से हैं···एक में अधिकांश ब्राह्मण-परिवारों का अड्डा है, जिन्हें अपने पूर्वजों पर नाज है और अब अपने लड़कों को शराब, गांजा और चरस की लत में बदमस्त देख, हर समय आहें खींचनी पड़ती हैं। बसई का दूसरा हिस्सा वह है जहां हम आपको ले जा रहे हैं।

इसी बसई के दूसरे हिस्से में कभी मिट्टी के मकानों का झुरमुट था। वहां हर मिट्टी के मकान के आगे फूस का छप्पर होता था, जहां शृंगार कर शाम से ही कमसिन लड़कियां और युवा स्त्रियां खाटों पर बैठ जाती

थीं। राहगीर गुजरता था, निगाह डालता हुआ। जहां आंखें पसन्द करतीं वहीं ठिठक जाता और मोलभाव होने लगता। न कोई दलाल था तब, न आपसी झगड़े ! हर माटी का घर, एक घर था और उसका कमरा वैश्यालय। हर औरत गृहस्थन, पत्नी, मां और वेश्या थी। बंजारा कौम के इन परिवारों को मुगल काल में इन कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों ने ही अपनी मौज-मस्ती के लिए रोक लिया था। तन बेचना इस तथा-कथित बेंडिया जाति में पाप नहीं था। कहते हैं कि मेहमान निवाजी में सरगना बेड़ियां कौम, अपने मेहमान को खुश करने के लिए अपनी बेटी और बीवी प्रस्तुत करने में गौरव महसूस करती थी। पेट की मार ने इस गौरव को वेश्या-वृत्ति में बदल दिया और आज यहां वेश्या वृत्ति के अनेक रूप हैं··· काल गर्ल ··।··कीप··कम्पेनियन···पिप···।···दो रुपये घण्टे से हजार रुपये रात तक के भाव हैं।

आज भी बसई के दूसरे हिस्से में माटी के घरों की कमी नहीं है पर पचास के आस-पास पुख्ता आधुनिक घर भी है जहां कुछ में कूलर, एयरकण्डीशनर लगे हैं···गैराज में इम्पाला और डाज खड़ी हैं, किन्तु कमाई का हिसाब किसी बही पर नहीं आता है। इन्कमटैक्स अफसर भी तहकीकात करते हुए अपनी ही जेब खाली कर आता है। शामको दलाल घूमने लगते हैं···।···बड़े पक्के मकानों पर टेलीफोन से समय तै हो जाता है, या गाड़ी कब पहुंचेगी अमुक को लेने, इसकी इत्तिला दे दी जाती है।

श्रीमती झुनझूनवाला के साथ शोध में व्यस्त दो युवक राकेश और सदन तथा एक लड़की आरती भी है। झुनझुनवाला समाज-सेविका है। वो नारी-जाति के इस कलंक को मिटा देना चाहती हैं कि जिस काया को ईश्वर ने सृजित किया है, उसे नारी स्वयं बेच कर उपार्जन करे। सदन, राकेश और आरती सिर्फ अपनी जिज्ञासा शान्त करने एवं डेटा कलेक्शन करने आये हैं···।

गाइड पहले एक कच्चे मकान में ले जाता है। अन्दर से लम्बा-चौड़ा मर्द बाहर आकर खड़ा हो जाता है। दस अदद तलवों को धूप में झुलसते देख कहता है—"छप्पर में आजाओ।" फिर गाइड की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से ताकता है। गाइड शब्दों में गडमड करता है—"कुछ पूछेंगे···।···

इसीलिए···।" आगे बोल नहीं पाता है। सुडौल काया एवं साफ रंग का पुरुष अट्टहास करता है—"अखबार वाले हैं तो। रोज ही आ मरें। दिन में इकट्ठे और रात में छुपके। पर बैयरबानी देख समझा कि जा छोरी का सौदा करवे आये हैं। बम्बई से ऐसी ही बीवियां और छोरे, माल लायें और ले जायें।"

श्रीमती झुनझुनवाला अचकचा जाती हैं। उनके गोरे गाल तमतमा उठते हैं। क्या कोई मुझे भी नायिका समझेगा···?···छी, कैसे लोग हैं। तभी अन्दर से घूंघट काढ़े एक युवा देह दरवाजे की देहलीज पर आकर रुक जाती है—"जो हों; पानी-वानी तो पिलाओ इन्हें।" फिर पास ही खड़े तख्त को गिरा; सबसे बैठने के लिए कहती है। खुद भी बैठ जाती है।

सदन पूछता है—"आप इनकी घरवाली हैं।"

युवती खनकती हुई हंसी के साथ कहती है—"हां?"

"आपके आदमी क्या करते हैं?"

औरत खिलखिला के हंसती है। उसकी आंखों में रात की जाग और मस्ती की लहर है—"अरे बाबूजी। वो क्या करेंगे? जहां आदमी कमाये औरत खाये और जहां औरत कमाए वहां आदमी खाये।"

"पर आप ऐसा क्यों करती हैं? आपका आदमी तन्दुरुस्त है। मेहनत करके कमा सकता है फिर क्यों···?" ··आरती पूछती है।

"अल्ला दे खाने को तो मौला जाये कमाने को। पर मेरे मरद पर तो आंख नहीं लग गई आपकी?" औरत उल्टा मखौल करती है। आरती के गाल लाल हो जाते हैं। सदन ललचाई निगाहों से घूरता है।

"बच्चे हैं?" झुनझुनवाला पूछती हैं।

"हैं। एक लड़का एक लड़की।"

"पर वो···इनके पिता··?" राकेश अपनी हकलाहट में साफ प्रश्न नहीं कर पाता है।

औरत फिर हंसती है। हंसने पर उसके गाल में गड्डे पड़ जाते हैं। राकेश ऐसी ही नारी की कल्पना करता रहा है, पर मिली भी तो इस परिवेश में। नारी पुरुष के हाथ से लोटा ले, गिलास में पानी भरती हुई कहती है—"हाथी घूमे गांव-गांव, जिसका हाथी उसका नाम।"

सकते के साथ सब एकटक उसे देखते रह जाते हैं। यह नारी है··· पत्नी है ··वैश्या है···मां है···।···कितनी उन्मुक्त···।···इसे अपनी व्यथा का भी पता नहीं है।

"तुम अपनी लड़की को भी इसी पेशे में डालोगी ?" झुनझुनवाला रूखा सा सवाल फेंकती है।

औरत के चेहरे पर तमतमाहट उतर आती है—"नहीं डालूंगी मेम साब, अगर आप अपने लड़के से उसकी सगाई कर लें।" पीछे खड़ा उसका मर्द एक ऊंचा कहकहा लगाता है। शोध पार्टी हड़बड़ा के उठ खड़ी होती है। आगे बढ़ते हुए श्रीमती झुनझुनवाला गाईड पर चिड़चिड़ाती हैं— "कहां ले आये। तमीज ही नहीं है उसे तो ··कमीनी।" पर अन्दर ही अन्दर सत्य को हर कोई अहसासता है।

"आन्टी प्लीज। गाली न दें।" आरती उन्हें रोकती है—"उसका जवाब आहत करने वाला था, किन्तु कितना हकीकी।" मुड़ के देखती है— युवती के चेहरे पर व्यथा और घृणा के भाव चिपके हुए थे···।···पर है कितनी सुन्दर···?···।···कितनी उन्मुक्त···?···।

"कोई आई. ए. एस. का साक्षात्कार नहीं है आन्टी, जहां लड़के दब के जवाब दें। यहां से हर ग्राहक पैसे की पूरी वसूली करके जाता होगा, फिर वो क्यों डरें···? किसका कर्ज खाया है उन्होंने।"

झुनझुनवाला गुस्से के साथ घूरती हैं, तो आरती चुप हो जाती है। पगडण्डी पर चल रहे हैं सब। तभी पगडण्डी एक सड़क से मिली कोठी में विलीन हो जाती है। गेट पर नेम-प्लेट लगी है—मिस दारूवाला, डांसर।

गाईड गेट खोलता है। सब अन्दर प्रवेश करते हैं। गाईड घंटी का बटन दबाता है। नेकर-कमीज में एक लड़का थोड़ा-सा दरवाजा खोल झांक कर अन्दर चला जाता है···।···फिर एक नींद से जागी युवती, जिसके गेहुंए चेहरे पर गजब का आकर्षण था, अलसाई-आंखों से ताकती हुई द्वार खोल पूछती हैं—"कहिए ?"

गाईड हसन सामने आ जाता है—"इन्टरव्यू लेने आये हैं।"

"क्यों ? काहे का इंटरव्यू ? अखबार वाले हैं क्या ?" युवती की भौंहें कमानीदार हो जाती हैं।

आरती आगे बढ़के कहती है—"नहीं। अखबार वाले नहीं, रिसर्च स्कालर, यानी खोज करने वाले हैं···।"

"मुझे अंग्रेजी आती है।" युवती आरती को बीच में ही टोक देती है। फिर एक अंगड़ाई लेते हुए कहती है—"ये कोई टाईम नहीं है इन्टरव्यू का। पहले से एप्पांइन्टमेन्ट लेती···ऐसे ही कैसे हो सकता है···इन्टरव्यू, मेरा सेक्रेटरी भी शाम को आयेगा·· गाड़ी ठीक कराने गैराज में ले गया है।" युवयी के स्वर में गर्व था।

राकेश अनायास सामने आ जाता है—"मैडम ! हमें अफसोस है कि काम बेकायदा हो गया, पर हमें आज ही राजस्थान जाना है रात में···। ···इसलिए अगर मेहरबानी हो जाये तो···।"···राकेश साफ झूठ बोल जाता है।

युवती इठलाते हुए एक ओर हट कर अन्दर आने का इशारा करती है। खूब बड़ा ड्राईंग रूम है। सोफों पर बालवेट चढ़ा है। अन्दर एयर-कन्डीशनर चालू है···।··पूरे तीन सेट सोफो पर, चार और लड़कियां झपकियां ले रही थीं। भीड़ भरे पैरों की आवाज से जाग कर उठ बैठती हैं। राकेश और सदन ललचाई आंखों से उनके जिस्मों को टटोलते हैं। फिर वो चारों एक ही सोफे पर बैठ जाती हैं और मिस दारूवाला एक सिंगल कोच पर बैठते हुए औरों को सामने बैठने का इशारा करती हैं।

श्रीमती झुनझुनवाला स्वयं को रोक नहीं पाती हैं—"आप दारूवाला कैसे हैं ?" शायद किसी वैश्या का पारसी होना साल रहा था उन्हें।

दारूवाला मुस्कराती है—"युसुफ साहब मुसलमान हैं पर दिलीप कुमार कहलाते हैं। मीनाकुमारी भी मुसलमान थीं··।··जरीना वहाब भी अब हिन्दू नाम से मद्रासी फिलमों में काम कर रही हैं, फिर अगर मैं दारूवाला हूं तो क्या मेरा पारसी होना जरूरी है ? नाम कोई धर्म के बंधक तो नहीं है।"

श्रीमती झुनझुनवाला को लगा कि जैसे किसी ने उनकी नाक पर घूंसा मारा हो और वो चारो खाने चित्त गिरी हों।—लोग खड़े तमाशा देख रहे हों, और हंस रहे हो।

आरती ने उसकी नाक में पड़ी लौंग के हीरे को निहारते हुए कहा—

"आप भी नाक छिदाती और लौंग पहनती हैं ?"

दारूवाला की कमानीदार आकर्षक देह ने एक अधूरी अंगड़ाई के साथ कहा "फिर आप यह भी पूछेंगी कि आप पढ़ी-लिखी हैं या नहीं, आप भी हमारी तरह सोती जागती, खाती-पीती हैं या नहीं।"

आरती सकुचा गयी। दूसरे सोफे पर फकत अंडरवियर और चमकीली बनियाने पहने बैठी लड़कियों ने कहकहा लगा कर उसे और संकुचित कर दिया···।··· दारूवाला कह रही थी—"शादी पर आपके यहां लड़कियां नथ पहनती हैं। फिर वो भी लौंग पहनने लगती है। पर शादी है क्या? एक 'लीगल प्रास्टीट्यूशन' ही तो है ?···।··· उनकी नथ उतर कर लौंग में बदल जाती हैं और हमारी भी···।···फर्क यही है कि समाज में लड़की का बाप इस नथ उतराई में बिक जाता है और हमारे यहां सबसे ज्यादा लड़की के बाप को फायदा उसी दिन होता है जब उसकी लड़की की नथ उतरती है। इसे रिवाज कहिए या 'कल्चर··· कोई फर्क नहीं पड़ता है।"

"पर आप यह सब करती क्यों है ? आप पढ़ी-लिखी हैं···सुन्दर हैं···?" राकेश और कुछ कहना चाहता है पर दारूवाला रोक देती है—"गीता कहती है कर्म करने के लिए ही तू कर्म कर···अच्छा-बुरा · इसका न्याय परमात्मा करता है। आपके यहां भी पति को देह-सुख देना नारी का पुनीत कर्तव्य है। आम औरत का एक ही पति, यानी ग्राहक होता है वो उसे सुखी करती है···।···हम पूरी ईमानदारी से एक ग्राहक को एक रात में पूर्ण सुखी करते हैं। पति-पत्नी को सजाने के लिए पैसे खर्च करता है। हमारे ग्राहक हम पर खर्च करता है। जो आपके समाज में प्रतिष्ठापूर्ण है उसी को हमारा समाज में आप लोग गन्दगी के रूप देखते हैं। एक आदमी के बिस्तर पर रोज घिसती औरत, पाती क्या है ? आमतौर पर गरीबी···चिड़चिड़ापन और ज़िन्दगी का दोजख जिसके लिए वो सुबह पाँच बजे उठती है और बारह बजे सोती है। एक काल-गर्ल अपने 'प्रोफेशन' से उस औरत से सौ गुना ज्यादा सुख पाती है और पुरुष को पूर्ण-तृप्ति देती है। वो जिन्दगी में घिसटती नहीं है···।···देखिए न चार साल में मेरे पास क्या कुछ नहीं है।"

"पर आप तो···'डांसर'···।" राकेश टोकता है।

"क्यों शक है ? हम सब 'कैबरे डांसर' हैं। मैं यह मानती हूं कि जिस नृत्य की आप कल्पना कर रहे है और जिसे मैंने भी अपने कालेज जीवन में सीखने की कोशिश की थी, उसका इस प्रोफेशन के नृत्य से कोई रिश्ता नहीं है···।···नर्तकी आखिर वही नाचेगी जो लोग पसन्द करेंगे। लोगों को चाहिए नंगा-जिस्म। उभरे अंगों का थिरकना और ढके हुए अंगों की झलक···।···हम वो नृत्य भी कर लेते है, क्योंकि जिन्दगी का आधार है पैसा ? जिस समाज में तस्कर-काला-बाजारिये सम्मानित व्यक्ति हो गए है, एक दिन हम भी वहां सम्मानित होंगे ही। आखिर वो दौलत हमारे पास आती ही व्यापारियों से, बड़े सरकारी अफसरों से और भारत का गौरव देखने आये निमंत्रित विदेशियों से ही तो है।"

एक इशारे पर नेकर-कमीज पहने लड़का कैम्पा की बोतलें बड़ी तरतीब से ले आता है। श्रीमती झुनझुनवाला एक लम्बा घूंट गटकते हुए तीखे स्वर में कहती है, "पर इस पेशे को एक दिन छोड़ना ही होगा। पुलिस, सरकार ज्यादा दिनों तक आपको टिकने नहीं देगी।"

युवती की आंखों में हंसी घुल गयी थी—"आप बौरा गयी हैं। ड्यूटी से थका और बासी-बीबी से उकताया हुआ पुलिस अफसर···दौरों से क्लांत मंत्री, जिसकी बीबी के मुंह से पाईरिया की बू आती है और जो रोज किसी न किसी बीमारी के लिये डाक्टरों से एपाइंटमेन्ट लेती फिरती हैं उनका दरगाह तो हमारा यह चमन ही है। सिर्फ आंख बचाने के लिए बाहर लगी तख्ती नहीं देखी है आपने-मिस दारूवाला···डांसर। ···आज के समाज में हर एक ने नकाब पहन रखा है···इसे कहते है 'केमोफ्लजिंग'।"

श्रीमती दारूवाला चिड़चिड़ा रही थीं—"क्लमजी। इन समाज के फोड़ों के लिये आप्रेशन जरूरी है। मेरा बस चले तो मैं···।" आरती को लगता है कि नेताओं और रिश्वत खोर अफसरों से ये कहीं कम गुनाहगार है, जो मुल्क को बेचते हैं। ये तो सिर्फ देह बेचती हैं और ग्राहक ठोक-बजा के दाम वसूल करता हैं।

तभी सब बस्ती के तीसरे मकान में पहुंच चुके थे। मकान पक्का था पर न वहां कूलर था और न ही जिस्म-फरोशी का वातावरण। ड्राइंगरूम

में रामकृष्ण और बुद्ध के चित्र लगे थे। श्रीमती झुनझुनवाला ने संदिग्ध दृष्टि से गाइड की ओर देखा। कमरे में किताबें रैक में तरतीब से सजी हुई थीं।

बुर्जुग से आदमी ने प्रश्नात्मक दृष्टि से देखते हुए पूछा—"कहिए मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं ?"

झुनझुनवाला ने पसीना पोंछते हुए कहा—"शायद गाइड हमें गलत जगह ले आया। हम तो बसई के बेड़ियों के इन्टरव्यू लेने आए थे।"

"फिर गलत जगह कहां ? मैं भी बेड़िया ही हूं। पर शायद आपका आशय उन घरों से है, जहां पेशा होता हैं ?"

आरती ने हामी में सिर हिलाया। बुजुर्ग ने एक व्यंग्य भरी मुस्कराहट के साथ कहना शुरू किया—"एक गन्दे पेशे पर रंगीन कलम चला पैसा कमाना भी एक तरह का पेशा ही है। रोज अखबार वाले हिन्दुस्तान की अनगिनत बस्तियों से तथ्य और सत्य बटोर भोंडी कथा छापते रहते हैं पढ़ने में आकर्षक होती है। नौजवानों को वैश्यालयों की ओर मोड़ देती है···।···शायद उसे 'ब्रदर' या 'सिस्टर' प्रोफेशन कहा जाए तो ठीक रहेगा।"

बड़ी करारी चोट थी अखबार वालों पर। अगर कोई अखबार का रिपोर्टर होता तो गिरहबान पकड़ लेता बुजुर्ग का।

"जी नहीं···हम तो शोध कर रहे है नारी के जीवन के इस निचले पहलू पर जिसमें चमक है, पर अन्दर ही अन्दर घुटन।" आरती ने गम्भीर हो कहा।

"ओह ! पर शोध से होगा क्या ? पुश्तों से चला आया यह पेशा, मजबूरी से औरतों द्वारा अपनाया गया यह पेशा, पैसे और ग्लैमर के लिए अपनाया गया यह पेशा। इसकी नींव की हर कहानी तो मालूम है सबको। फिर शोध से क्या होगा बेटी ?" आरती को गहन संवेदना नजर आयी इस स्वर में।

'नारी इस पेशे में संभोग—वस्तु बन के भी इतनी पराजित नहीं है, जितनी उस पाक—साफ दुनिया में, जहां दहेज के लिए उसे जला दिया जाता है···।···कुरूपता के कारण यातना दी जाती है या गरीबी और

दायित्व से दबके वह अस्तित्वहीन हो जाती है—सड़ी प्याज की तरह, गंधाती, तिरस्कृत रहती है।"

"पर अंकल इससे जिस्म-फरोशी को जायज तो नहीं कहा जाएगा ?" राकेश ने व्यग्रहो कहा।

"ठीक कहते हो। पर पहले अपनी कहानी कहता हूं—मेरी मां पेशा करती थी। मैंने पढ़ाई की अपनी पत्नी को इस गन्दगी से दूर रखा। मेरा बेटा आज इन्जीनियर है और बेटी टीचर है। लेकिन दोनों कुंआरे हैं। सिर्फ इसलिए कि उनकी जाति बेड़िया है। आज मेरा बेटा समाज से नफरत करता है और थक के एक दिन इस गन्दी बस्ती में घूमने लगेगा। मेरी बेटी रूप गुण के होते हुए भी विधवा की तरह उदास रहती है। शोध का अर्थ है—संकल्प। क्या तुम में से कोई इस संकल्प के लिए कुछ कर सकता है या सिर्फ नौकरी के लिए सर्टिफिकेट भुनाने के लिए ये शोध कर रहे हो। अगर ऐसा है तो यह शोध नहीं लीपा—पोती है।"

श्रीमती झुनझुनवाला ने (यूडी कोलोन) कागज निकालकर माथे पर रख लिया। तभी बीस-बाईस की सुगढ़ युवती काफी के प्याले लिये अन्दर आयी। आरती के नमस्कार का उत्तर उसने एक मुस्कराहट से दिया...।...राकेश को एक बार फिर लगा कि यही वो युवती है जिसकी कल्पना करता रहा है। इसकी मुस्कान भी गालों में भंवर पैदा करती है। और नयन-नमन।

ट्रे रखकर उसने आरती को संबोधित करते हुए कहा—"बुरा मत मानना बहन। पिता जी को सामाजिक संत्रास ने कटु बना दिया है। शायद उनके वाक्य बुरे लगे हों। लेकिन उनसे मिली नैतिक और आत्मिक शक्ति के सहारे सामाजिक प्रतिष्ठा के बिना भी हम आस्था से जी सकेंगे।" तभी एक सजीले युवक ने कमरे में प्रवेश किया। शायद इतवार की दोपहर की नींद पूरी कर बहन को तलाशता हुआ आया था। आरती ने महसूस किया कि इस युवक में क्या कमी है ? पढ़ा, लिखा, सुन्दर इंजीनियर है। फिर एक अदद सुघढ़ पत्नी के लिए अनादर सह रहा है जबकि फटे हाल क्लर्क के लिये लाईन लग जाती है।

नमस्कार कर बाहर आ-जाते हैं। श्रीमती झुनझुनवाला बड़ बड़ा रही

थीं—"पूरा दिन बेकार गया।" उनके बैग में नारी—सुधार पर लिखी पुस्तकें बोझ की तरह लटक रही थीं।

श्रीमती झुनझुनवाला गाईड पर झुझंलाती है—'ईडियट। जाने कहां कहां ले गया। पूरा मिशन ही फेल हो गया।"

एक नींद लेने से पहले सदन लाज में श्रीमती झुनझुनवाला के कमरे में आ जाता है।···झुनझुनवाला ने सुबह ही मंगा कर मिनी फ्रिज में बियर की बोतलें लगा रखी थी···।···दो-दो ठण्डी-ठण्डी बोतलें पीकर दोनों का पसीना सूख जाता है, और वो दोनों एक-दूसरे के बहुत करीब आ गये थे। इतने करीब कि चन्द क्षणों के लिए अलग होना असम्भव था।

लाज के दूसरे कमरे में राकेश, आरती के पास अपने दिल की बात कहने गया था। किन्तु सिर्फ पेटीकोट और ब्रा में आरती की देह-गंध ने उसे भी मतवाला कर दिया।

●●

पुष्पं शरणं गच्छामि

अंबिका प्रसाद कस्बे में स्थायी रूप से रहने लगे हैं। यदा कदा जब भी बाजार के लिये निकलते हैं तो सरस्वती विद्या मन्दिर के अहाते से सटी संकरी सड़क से गुजरने पर गर्म हवा का झोंका उन्हें छू जाता है। अन्दर ही अन्दर सदमें की शक्ल में एक दाह उभर आता है, उन्हें लगता है कि जहां शहर में जमीन हथियाने में संलग्न भीड़ इमारतों के रूप में शहर को तंग करती जा रही है वहीं गांव और कस्बे के लोग जो एक बित्ता जमीन के लिए मुकदमेंबाजी और कत्ल करने पर आमादा रहते हैं धरती का सबसे अधिक अनादर करते हैं। खेतों के सिवाय कहीं और हरियाली जरूरी है यह बात उनके जहन में भी नहीं आती है।

इसी स्कूल में कंपाउंड से थोड़े फासले के साथ कभी क्यारियों में उन्होंने अस्सी किस्म के फूल लगवाए थे···बेलों के झुरमुट लगवाए थे और कम्पाउण्ड वाल के साथ कतार में सफेदे के पेड़ लगवाए थे जो अपनी नन्हीं उम्र में बाल प्रहरियों की भांति दीवार के पीछे से झांकते रहते थे। उनकी लघु छाया में क्यारियों के फूल गर्म लू में भी शीतलता अनुभव करते थे। स्कूल के चौकीदार फूल पौधों की जमकर देखभाल कर सकें इसलिए खेल के मैदान के दक्षिणी सिरे पर उनके रहने के लिए पांच कोठरियां भी बनवाई थीं जिनके पार्श्व में एक पूरी अमराई के सृजन का उन्होंने प्रबन्ध किया था। इमारत के सामने वाले भाग में दो वृत्ताकार पुष्प बीथिकाएं बसन्त के आगमन के साथ यकायक मुखरित हो सबका ध्यान आकर्षित कर

लेती थीं। पूरे तीन वर्ष की हर छुट्टी का दिन इसी स्कूल···वाटिका के लिए समर्पित किया था—जज अंबिका प्रसाद ने। इलाहाबाद से कस्बे तक की अस्सी किलोमीटर की दूरी भी उन्हें उन दिनों अखरती थी। कस्बा शहरारु की मौरुसी कोठी सदैव चहल पहल से मुखरित रहती थी।

कल्याणी ने इसी कोठी के एक बैडरूम में पान लगाते हुए मादक चितवन से पूछा था—'मांजी की याद में तो तुमने यह स्कूल बनवा दिया·· मेरे लिए क्या बनवाओगे जज साहब ?'

कल्याणी से अलग जीवन जीने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे अम्बिका प्रसाद। हंस कर पान को गाल में एक ओर सरकाते हुए कहा था—"ये फूल और पेड़ हमें सदैव दीर्घायु का आशीर्वाद देंगे कल्याणी। अमराई के झूले पर तुम मां की खोई गोद का अहसास अनुभव करोगी। फूलों से भरी बेलों से आच्छादित छायाओं के उपवन में हम दोनों एक ताजमहल का अनुभव करेंगे।"

मौत शब्द से जज अम्बिका प्रसाद को सख्त नफरत है। कल्याणी जानती थी कि जब भी जज अम्बिका प्रसाद की कलम को सजाए मौत शब्द को छूना पड़ा है तब-तब एक सप्ताह पूर्व, एक सप्ताह बाद तक उन्हें अपने अन्दर एक निजी मौत की पीड़ा सहनी पड़ी है। इसीलिए मृत्यु के स्थान पर ताजमहल शब्द का उपयोग गहरी और खुशबू से भरी मौत की जगह उन्होंने किया था। किन्तु फूलों का आशीर्वाद आधा ही क्यों फला ?

जज अंबिका प्रसाद के इजलास में गभीर क्राईम के लिए दोषी अभियुक्त भी अपने अन्दर जीवन दान की क्षीण आशा संजोए रहता था। अंबिका प्रसाद के संस्कार और गहन अध्ययन उन्हें सृजन और संकल्प की वेदी पर दृढ़ बनाए रखते। उनके फैसलों में सत्य और तथ्य का गहरा विश्लेषण होता। एक सर्जन की तरह हर तथ्य का जर्रा-जर्रा अलग कर माइक्रोस्कोप के सामने उसका सच्चा स्वरूप देखते। उनके फैसलों की प्रतियां दूसरे हाईकोर्टों के जज घर ले जाकर अध्ययन करते थे। नीर··· क्षीर ··विवेक उनके फैसलों में सार्थक रूप पाता।

इलाहाबाद की सिविल लाइन्स के बड़े अहाते वाली कोठियों में जून की दहशत भरी बाहों में भी अंबिका प्रसाद की वाटिका में शीतलता फैली रहती। दो माली हर पेड़ पौधे की नन्हें शिशु की भांति सेवा में संलग्न रहते। हर बार फूलों के मेले में अंबिका प्रसाद की वाटिका इनाम जीत लाती। इनाम की शील्ड को मुग्ध दृष्टि से निहारती हुई कल्याणी पूछती—'इसे कहां रखूं जज साहब? अब तो मेहरबानी कर दूसरों को भी इनाम जीतने का अवसर दें अन्यथा इन्हें रखने के लिए एक अलग कांच का कमरा बनवाएं।'

अक्सर पार्टियों में लोग कल्याणी को घेर लेते। कल्याणी की रूप शिखा में लिली के लाल दहकते हुए फूलों के अंगार नहीं हैं। ममता-प्यार और रूप की प्रपार्शनट मिकदार है··मानों सफेद लिली··लाल जावा कुसुम और पीले गेंदे की माटी पर हिना का अर्क छिड़क कर उसकी काया को गढ़ा गया था। कंवल पंखड़ी जैसी आंखों में ओस भीगी करुणा भी तैरती थी।

अंबिका प्रसाद के आदमकद उजले व्यक्तित्व की छाया में कल्याणी का अस्तित्व एक गहरी झील सा गंभीर और मुखरित बना रहता · अवसर और क्षण के अनुरूप मादक और स्फूर्तिदायक। लोग मधुर व्यक्तित्व का राज बताने के लिए उकसाते। कल्याणी कहती—'जालिम दो सौतों के मध्य से पति को हथियाने के लिए बड़ा कुछ करना पड़ता है। एक तरफ मोटी-मोटी कानून की किताबें, दूसरी तरफ बागवानी का लिट्रेचर··दोनों के बीच से तलवार की धार पर चलकर जज साहब के दिल तक पहुंचना पड़ता है।'

अंबिका प्रसाद परिचर्चा में कूद पड़ते हैं—'अरे बाबा···इतना झूठ! एक क्षण भी तो दूसरों के लिए मुश्किल से देती हैं। फूलों में झांको तो इनका चेहरा और सुगंध उभर आती है, किताब खोलो तो हर सफे पर इनका अक्स फैला रहता है। जब फैसला लिखता हूं तो इनकी सीपी जैसी पलकें बोलने लगती हैं···मैं कल्याणी हूं···इसीलिए फैसला संभल कर

करना···किसी का अकल्याण मत करना।'

कल्याणी को वहां से भागना ही पड़ता। वापसी में आगे की सीट पर पति से सटकर बैठ पूछती—'मेरा इतना मज़ाक क्यों उड़ाते हो?'

एक हाथ से स्टियरिंग संभाले अंबिका प्रसाद अपने और निकट खींच कल्याणी से कहते हैं —'मजाक नहीं, सच कहता हूं कल्याणी···तुम्हें एक फूल का नाम नहीं दिया जा सकता है, तुम तो समूचा उपवन हो···बस तुम में कहीं कांटा नहीं है···इसी से भय बना रहता है।'

कल्याणी छुईमुई सी हो जाती है—'तुम जो मेरे रक्षक हो। फिर कांटों का क्या काम?'

पर अंबिका प्रसाद क्या कल्याणी के उपवन की रक्षा कर सके?—स्कूल कालेज या आम जलसों में जहां भी बोलना पड़ा वे एक संदेश जरूर देते—विद्या भवनों में या तीर्थ स्थलों में शिक्षा और धर्म का वातावरण तो मिल सकता है परन्तु व्यक्ति के अन्दर सृजन और गुण के सौन्दर्य की स्थापना के लिए बागवानी आवश्यक है। मन और धरती, जितनी गहराई तक उनमें जाओगे·· उतना ही सुख और गंध तुम पाओगे। सृष्टि का रहस्य और ईश्वर के साथ एकाकार महसूस करने के लिए एक पौधा लगा कर देखिए···।

और अचानक ही फूलों की एक बीथिका में वे पहुंच जाते। अनगिनत फूलों से कल्याणी की साड़ी आच्छादित हो जाती और एक मधुर गंध उन्हें भाव विभोर कर देती। वह गंध फूलों की होती थी या कल्याणी के देह प्राण की आज तक उसका फैसला नहीं कर पाए हैं क्योंकि फूलों से जुदा कर उन्होंने कल्याणी को कभी देखा और सोचा नहीं हैं।

शिक्षाविद पिता के साथ ममतामयी मां सरस्वती देवी ने सदैव अपने अन्दर हीनता सी महसूस की। अपनी शिक्षा विहीनता पर मां को सदैव मलाल बना रहा। पति ने कभी कुछ कहा नहीं पर अन्दर ही अन्दर पत्नी के रूप में गहन संताप झेलती रहीं। पति के साथ जलसों में जाने से कतरातीं। मरते वक्त बेटे से कन्या पाठशाला बनवाने का आश्वासन ले

अपनी अविद्या के दोष से ऋण मुक्त महसूस किया था उन्होंने।

मां की कामना को साकार कर एक गहन सन्तोष महसूस किया था अंबिका प्रसाद ने। पिता द्वारा छोड़ा धन का राई-रत्ती आठवीं कक्षा तक के सरस्वती विद्या मन्दिर में लगा दिया था। लेकिन नौकरी की वजह से स्कूल का भार रघुवंशमणि के हाथ छोड़ स्वयं निश्चिन्त हो गये थे। पूरे पांच वर्ष फिर लौटना न हो सका। गर्मी के अवकाश में भी पहाड़ों पर अक्सर उन्हीं दिनों होने वाले सेमिनार्स और सिम्पोजियम्स में व्यस्त रहे।

इस बीच सरस्वती विद्या मन्दिर रघुवंशमणि द्वारा लिखे पत्रों के सहारे हाईस्कूल में परिवर्तित हो गया। रघुवंश ने लिखा था कि यहां के व्यापारी दो लाख रुपया लगाने को तैयार हैं यदि अंबिका प्रसाद अपने अधिकार एक ट्रस्ट को सौंप दें जिसके वे भी एक ट्रस्टी होंगे। मां के सपने को विशाल होने में जज अंबिका प्रसाद क्यों रुकावट डालते ? सहर्ष लिख कर दे दिया। लेकिन उन्हें मालूम नहीं था कि बढ़ते हुए कमरों की दीवारों पर बेतहाशा छिपकलियां रेंगने लगी हैं और चौखटों को दीमक खाने लगी है।

ग्रीष्मावकाश शुरू होते ही चल पड़े थे। घर पहुंचने से पूर्व गाड़ी स्कूल कम्पाउण्ड के बाहर छोड़ स्वयं अन्दर चले गये थे। कल्याणी और दीपू को कोठी जाने की कह तेजी से अन्दर की तरफ लपके थे। किन्तु गर्म हवा के झोंके ने स्तब्ध कर दिया।

अध्यापिकाएं बरामदे में गप्पें मार रही थीं···मालियों का कहीं अता-पता नहीं था। कक्षाओं से उभरते शोर को क्लास मानीटर बनीं लड़कियां बेंत डेस्क पर मारकर शांत करने का निष्फल प्रयास कर रही थीं। प्रिंसिपल अलका गुप्ता कमरे में बैठी झपकी ले रही थीं।

अंबिका प्रसाद को देखते ही झेंप के साथ खड़ी हो गई—"अरे जज साहब आप ! धन्य भाग्य हमारे। आपकी लगाई यह वाटिका अब बट बृक्ष बन गई है. देखियेगा तो चौंक जाएंगे।"

चौंक तो पहले ही चुके थे अंबिका प्रसाद। वट बृक्ष को आंक चुके थे

जिसकी जड़ों में रस नाम मात्र को नहीं था और डालियां पतझर की रूप रेखा साकार कर रही थीं। बाहर सूखी क्यारियां···बीथिका के नाम पर गोल माटी का दायरा और अनगिनत सफेदों में से बचे चन्द सिर झुकाए सफेदों को देख उनका हृदय पीड़ा से भर गया था। उन्हें स्पष्ट दिखाई दे गया कि शांतिनिकेतन की कल्पना को साकार करने का सपना अपनी तोतली उम्र में ही अब मर चुका है।

फिर आऊंगा कहकर जज अंबिका प्रसाद अपनी कोठी की ओर सरपट चल दिए। उनके चेहरे पर बिखरी व्यथा कल्याणी सहज ही आंक लेती है। सांत्वना के भरसक प्रयास भी अंबिका प्रसाद का मौन नहीं तोड़ पाते हैं। कोठी के अहाते की वाटिका पूरी तरह हरी भरी थी। कोठी के दोनों नौकर मालिक की खुशी को पूरी तरह समझते थे। वहीं कुछ धैर्य मिला उन्हें।

शाम को स्कूल की पुरानी अध्यापिकाओं का पूरा दल जिन्हें अंबिका प्रसाद ने नौकरी दी थी अपनी व्यथा और आक्रोश का मुजाहिरा करने आ पहुंची—हमें पूरी तनख्वाह नहीं मिलती है। हस्ताक्षर ज्यादा पर करने पड़ते हैं और पैसे कम मिलते हैं। प्रिंसपिल अयोग्य होकर भी डिक्टेटर की तरह बुरा सलूक करती है क्योंकि वे आढ़तिया धर्मदास की साली है···। नियुक्तियां, सिफारिश और रिश्वत के जरिए होती हैं·· गरीब बच्चों से फीस माफ होने पर भी फीस ली जाती है और वो पूरा पैसा प्रिंसिपल हड़प जाती है। स्कूल में एक भी हरिजन अध्यापिका की नियुक्ति नहीं हुई है आज तक··लाला बंशीलाल और हिंदी की टी. जी. टी. अध्यापिका सुमन के मध्य गड़बड़ संबंध हैं···सरकारी एड का पूरा दुरुपयोग हो रहा है।

चौकीदार लुक छुप कर अन्धेरे की आड़ में आये थे—मालिक बगीचा कैसे देखते···?···आधे लोग मैनेजर और प्रिंसिपल के घर पर काम करते हैं और आधे···।

सबको क्षीण आश्वासन के साथ विदा किया था अंबिका प्रसाद ने। अंबिका प्रसाद को लग रहा था कि व्यर्थ के झंझट में फसकर अपने अन्दर विषाद भर लिया। रघुवंशमणि ने इसरार कर बुलाया था—ग्यारहवीं

खुल रही है…अध्यापिकाओं के साक्षात्कार के लिए आपका आना जरूरी है…ट्रस्ट में गहरी गड़बड़ और दरारें उभर रही हैं।

किन्तु चन्द घन्टों में ही वक्त के आराजक पदचिन्हों की गति अंबिका प्रसाद ने पढ़ ली थी। जानते थे कि युग प्रवाह के अशांत तूफान को वे किसी ओर से भी रोकने में असमर्थ हैं। पर आए हैं तो रघुवंशमणि की बात रखनी ही पड़ेगी।

सात तारीख के पहले साक्षात्कार में अनमने भाव से आ बैठे। पहली नियुक्ति अंग्रेजी अध्यापिका की होनी थी। रिचा दयाल की अर्जी उनके सामने थी। एम.ए. में फर्स्ट डिवीजन और दो साल से शोध कर रही हैं रिचा दयाल। शोध का विषय है—अग्रेजी भाषा का विकास और दूसरी भाषाओं पर उसका प्रभाव।

"—आप शोध कार्य अधूरा छोड़ नौकरी क्यों करना चाहती हैं ?" अंबिका प्रसाद पूछते हैं।

"—पिता की मृत्यु से आर्थिक सँकट उपजे थे। मां के अपग होते ही लाचारी के रूप में और कोई रास्ता नहीं बचा है।" शुद्ध उच्चारण, नर्म आवाज में कहा रिचा दयाल ने।

दूसरी केण्डीडेट को बुलाने से पूर्व बहस होती है। अंबिका प्रसाद कहते हैं—"ऐसी विदुषी भी इस कस्बे के स्कूल को मिल सकती है सोचा नहीं था।"

'आप भी क्या बात करते हैं जज साहब ? काबिल जरूर है पर स्कूल के काम की नहीं है। रोज मां की बीमारी के बहाने लखनऊ भागेगी… फिर आपने फैशन देखा…? …छोरियां अंग्रेजी की जगह फैशन सीखेंगी इससे और छोरे पतंग की तरह मंडराएंगे, घमंदास उचक-उचक के अपनी बात सुनाते हैं और बार-बार अपनी साली अलका गुप्ता की कलाई पर हाथ रख देते हैं।

दूसरी कैंडीडेट हैं श्रीमती ललिता मित्तल। वैश्य ट्रस्टियों के अधरों पर मुस्कुराहट की लहर उतर आती है—"आइए ललिता जी ! मित्तल

साहब तो ठीक हैं न !"

—"जी आपकी कृपा है।"

अंबिका प्रसाद का विद्वान न्यायधीश स्वयं को विदूषकों के मध्य घिरा हुआ पाता है। लाला वंशीलाल उल्लसित भाव से कहते हैं—'आप भी कुछ पूछो जज साहब।'

अंबिका प्रसाद खामोश रहना पसन्द करते हैं। शाई और स्काई को एक "श" के सहारे अपने आंचलिक ताल्लफुज के सहारे अंग्रेजी बोलती हैं ललिता मित्तल, जाते वक्त उनके चौडे कूल्हों को लालच भरी निगाह से सेठ धर्मदास ताकते हैं फिर एक दम अपना फैसला सुना देते हैं—'जी ठीक रहेगी बाल बच्चों वाली है, सास ससुर के साथ रहती है फिर मित्तल जी जिला बिजली बोर्ड में हैं···स्कूल की बिजली का खर्च भी कम हो जाएगा।'

अपनी स्वर्गीय मां की दीवार पर टंगी तस्वीर को करुण नमस्कार अर्पित कर अंबिका प्रसाद उठ खड़े होते हैं। बंशीलाल व्यंग्य करते हैं—"भई इजलास में जितनी देर बैठते हैं उससे ज्यादा कैसे बैठा जा सकता है जज साहब से ?"

अंबिका प्रसाद उत्तर में कहना चाहते हैं कि वाकई गल्ला मण्डी में इससे ज्यादा देर तक बैठना उनके लिए संभव नहीं है लेकिन उनका न्यायाधीश उनके व्यंग्य को चुरा लेता है। आशा के विपरीत परिवार ढाई दिन बिताकर इलाहाबाद की ओर चल पड़ता है।

कानून की किताबों में ज्यादा ही उलझे रहने लगे अंबिका प्रसाद। वाटिका में भी कुछ अधिक ही समय लगाने लगे। कल्याणी पति के दर्द का मूल जानती है पर करे क्या ? लोगों का यकीन अब पत्थर की इमारतों का ज्यादा कायल है···! उन्हें फूल और पौधों के लिए फुर्सत ही कहां है ?

उस दिन ज्यादा ही देर से पूरी तरह थककर लौटे थे अंबिका प्रसाद। कल्याणी बाहर के गेट पर ही इन्तजार कर रही थी। पति की थकान को आंक सकुचाहट के साथ कहा था—'एक आदमी वैठक में बड़ी देर से

इन्तजार कर रहा है। कहता है मिलना जरूरी है।'

अंबिका प्रसाद सीधे बैठक की तरफ बढ़ जाते हैं। कल्याणी पीछे से आकर पर्दे की ओट से देखती है।

अंबिका प्रसाद आगंतुक को पहचानने के प्रयत्न में असफल रहते हैं।

खद्दर के कपड़ों से ढकी हृष्ट-पुष्ट काया कुर्ते की बांह से मुंह पोंछते हुए कहती है—'पढ़ा लिखा ज्यादा नहीं हूं इसीलिए दो टूक साफ बात करूंगा जज साहब। फिर डर भी किस बात का?'

कहने के साथ काले ब्रीफ केस से निकाल नोटों के बंडल मेज पर रखते हुए कहता है—'फांसी के फन्दे से बरी करना होगा मजाल सिंह को। छुड़ाने को तो छुड़ा लेते कहीं से भी पर नेताजी कहते हैं कि इज्जत से छूटे तो बात दूसरी ही होगी।'

कांप उठे थे अंबिका प्रसाद—'आज ही तो गवाहियां पूरी हुई हैं। सैशन और हाईकोर्ट की गवाहियों में कितना फर्क आ गया है। पुलिस की तत्परता मरियल घोड़े की चाल में बदल गई है। शायद सारा पैसे का खेल है।

एक गहरी नफरत उनके अन्दर उभरती हैं। जुडिशियरी के लड़खड़ाते कदमों की कमजोरी एक गहरे विष का असर डालती है उनके मस्तिष्क पर। उठकर सीधे अन्दर चले जाते हैं। खद्दरधारी नोट ब्रीफ केस में भर स्टूल को ठोकर मार अपना आक्रोश प्रदर्शित कर चला जाता है। यह ठोकर स्टूल पर नहीं लगी, यह न्यायालयों पर गुण्डों का सामूहिक हमला था।

न्याय···ईमानदारी···देश···कड़वे धुएं के तूफान में एक जलयान की तरह डूबते हुए नजर आते हैं। अंबिका प्रसाद कांपने लगते हैं। रात भर कल्याणी उन्हें अपनी बाहों में समेटे रहती है। पर हर बार घिनौना विनाश स्वप्न उभर आता है। कल्याणी अपना आलिंगन और प्रगाढ़ कर देती है। ढलती रात के साथ सांसें सामान्य होती हैं। कल्याणी की बांह का तकिया लगाए अबोध बालक की तरह सो जाते हैं अंबिका प्रसाद।

सुबह दबी पलकों से कल्याणी बांह दुखने की शिकायत करती है। एक सन्तोष भरी मुस्कुराहट उभर आती है अंबिका प्रसाद के अधरों पर।

पर इस बचे हुए संतोष की आयु भी तो चुकने पर आ गई थी !

प्रतापगढ़ में सैमिनार था कानून पर। काफी पहले पेपर प्रेषित किया था अंबिका प्रसाद ने। सैमिनार के विशिष्ट अतिथि भी वे ही थे। काफी कानून विशेषज्ञों को सुनकर इस बार वे महसूस कर रहे थे कि कानून के नाम पर फकत लफ्फाजी रह गई है अब। गवाह, वकील, पुलिस और राजतन्त्र, इनमें से कोई भी सच नहीं बोलता हैं फिर न्याय कैसे हो सकता हैं ? सुने हुए बयानों के सहारे ही सिर्फ फैसला देकर कौन जज न्याय कर सकता है। अपने आज तक के लिए फैसलों पर पहली बार उन्हें शुबह हुआ।

पांच बजे सुबह ही कार लेकर लौट पड़े थे। सोच रहे थे कि कल्याणी के हाथ की काफी पीकर मन की उद्विग्नता सिमट जाएगी पर खुले गेट के अन्दर तो आठ सौ अस्सी बोल्ट का झटका उनका इन्तजार कर रहा था।

उनकी साधना की प्रतीक वाटिका तहस-नहस हो चुकी थी। किसी ने ट्रक या ट्रेक्टर से चप्पा-चप्पा रौन्द डाला था। बैठक में पुलिस वालों का हुजूम था। डी.एस.पी. चावला ने सेल्यूट देकर कहा—"किसी ने दुश्मनी निभाई है जज साहब···।···पूरे बगीचे पर ट्रक चलाया है और···।"

"और···और···क्या ?" ड्राइंग रूम से सीधे बैडरूम की तरफ दौड़ पड़े अंबिका प्रसाद।

बीच में ही डाक्टर रोक देता है। कल्याणी को घेरे हुए भी दो अन्य डाक्टर और नर्सें खड़ी हैं। फोल्डिग स्टेंड के साथ पलंग की दोनों ओर आक्सिजन सिलिण्डर और ब्लड बाटल्स लगी हैं .

—'नाजुक हालत देखकर मोबाईल इक्यूपमैंट यहीं लगाना पड़ा। खैरियत है कि सिर पर चोट नहीं आई। वैसे लगता है कि जमकर मुकाबला किया है इन्होंने।'

'कल्याणी'··क्षीण स्वर उभरता है। सिसकी के साथ जज अंबिका

प्रसाद एक निर्धन भिखारी की तरह कार्पेट पर बैठ जाते हैं। डाक्टर और डी.एस.पी. उन्हें बाहों से पकड़ कुर्सी पर बैठा देते है। अपनी बहकती हुई चेतना को अंबिका प्रसाद का जज संभाल लेता है। उठकर कल्याणी के चेहरे पर जिन्दगी तलाशते हैं। जानी पहचानी गंध अन्दर पहुंच एक सांत्वना बिखेर देती है—जिन्दा है।

डाक्टर से पूछते हैं—'बच जाएगी न।'

"पूरी उम्मीद है जज साहब। सिर्फ धक्कों से कई बार गिरने के कारण खून प्रवाहित हो उठा हैं।"

तभी दीपू टैक्सी से उतर दौड़ता हुआ ऊपर आता है। अपनी इंजनियरिंग की अंतिम परीक्षा कल खत्म कर आज उसे आना था। मां के दुलार के लिए उसका तन मन हुलस रहा होगा। बढ़ के दीपू को बांहों में भर लेते हैं।

पूरा बंगला न्यायधीशों और वकीलों से भर गया है। वकील हजारा सिंह भी है उनमें मजाल सिंह के वकील वही तो हैं। कैसा गम्भीर चेहरा बनाए हुए हैं। कानून से बचने के साथ कानून तोड़ने और उससे जीतने के तरीके सुझाकर ही तो ऊंची आमदनी हो पाती है ऐसे वकीलों की। आज हाईकोर्ट बन्द रहेगा। वकील और न्यायाधीश विरोध में जुलूस निकालेंगे।

पुलिस पुछताछ कर चन्द सिपाही वहां तैनात कर चली जाती है। अंबिका प्रसाद दीपू का ममतावश मुंह बन्द रखते हैं। दूसरी सुबह जागती है कल्याणी। डाक्टर बाप बेटे को बात करने की इजाजत दे देता है।

गम्भीर मुद्रा में मौन खड़े हैं अंबिका प्रसाद। दीपू के आंसू पोंछती हुई कल्याणी कहती है—'पागल रोता है। तू अपने बाप के महान वंश का दीपक है···तुझे दूसरों को प्रकाश देना है दीपू···तेरी आंखें आंसू बहाने के लिए नहीं हैं।'

आंखें पोंछता दीपू रोने के लिए दूसरे कमरे में चला गया था। एक क्षीण मुस्कान चेहरे पर लाकर अंबिका प्रसाद का हाथ पकड़ कल्याणी ने कहा था—'तुम्हारे साथ अमराई में झूलने वाला सपना तो पूरा न हो सका

जज साहब। पर मैं क्या तुमसे कभी अलग रह सकती हूं ? फिर तुम उदास क्यों हो ? अपने विवेक पर भावुकता को हावी मत होने दो जज साहब, नहीं तो मरते वक्त तक जिस सुख को पाती रही हूं वह धूमिल पड़ जायेगा। मुझे खोकर फूलों से रिश्ता मत तोड़ना! जहां भी जब भी तुम फूलों के बीच होंगे मैं वहीं तुमसे आकर मिला करूंगी। चाहो तो यहां की नौकरी छोड़ अपने कस्बे में चले जाना···अपनी कोठी के बगीचे में अनगिनत फूल लगाना···मैं वहीं मिला करूंगी।'

आगे बोलने से पहले सांस उखड़ गई थी। डाक्टर ने पूरी कोशिश की किन्तु अपना अन्तिम वसीयतनामा थमा के कल्याणी को सांसों की जैसे जरूरत ही नहीं रही थी।

फिर कभी इजलास में नहीं बैठे अंबिका प्रसाद। चैम्बर में ही बैठे रह कर मजाल सिंह का फैसला पूरी बारीकियों के साथ लिखा था। टूटते हुए गवाहों और शिथिल होती पुलिस को दोषी ठहराते हुए मजाल सिंह को सबूतों के अभाव में बरी कर दिया था। फैसला दूसरे जज ने सुनाया था। जेबों में अंग्रेजी पिस्तौलें सँभाले मजाल सिंह के साथी सकते में रह गए थे।

हजारा सिंह दौड़ता हुआ अंबिका प्रसाद के चैम्बर में घुस गया था। विनीत भाव से बूट पकड़ लिए थे। एक हिकारत भरी नजर फेंक अंबिका प्रसाद बाहर निकल आए थे। रात टेलीफोन पर नेताजी ने प्रार्थना की थी कि वे अपना इस्तीफा वापस ले लें। वे उन्हें मन्त्रियों से मिलकर चीफ जस्टिस बनवा देंगे। अंबिका प्रसाद ने बीच में ही रिसीवर रख दिया था।

सुबह आदतन अखबार खत्म कर किताबों की रैक की तरफ बढ़ते हैं। एक कातरता अन्दर सात परत तक उतर जाती है—कानून से अब तेरा क्या वास्ता अंबिका प्रसाद ?

बैडरूम में कल्याणी की अलमारी से निकाल गीता खोलते हैं पर मन नहीं लगता। अशांत मन से क्या गीता पढ़ी जा सकती है ? दीपू को अपने पास बैठाकर कहते हैं—"तुम अक्तूबर में आ जाना—सत्ताईस की शादी है

न तुम्हारी···तारीख नहीं बदलेंगे। तारीख बदली तो कल्याणी को दुख होगा। मैं कल से बाबा की कोठी में रहूंगा।''

सिर्फ दो सूटकेसों में कपड़े भर कर अंबिका प्रसाद श्मशान की भांति सांय सांय करती इलाहाबाद की कोठी की वाटिका को छोड़ अपने कस्बे की तरफ निकलने के लिए कार तक बढ़ते हैं। गेट के बाहर खद्दर के कपड़ों से ढकी वही आकृति हाथ जोड़े खड़ी थी। कार की खिड़की से सिर बाहर निकाल पूछते हैं—'क्या चाहते हो अब ?'

'क्षमा।'

'तुम्हें नेताजी ने भेजा है ?'

'नहीं। मेरी आत्मा मुझे लाई है।'

'तुम्हारी आत्माएं खून और कत्ल करने के बाद काफी देर से जागती हैं···उन्हें तो शायद ईश्वर ही क्षमा कर सकता है'—'कहते हुए अंबिका प्रसाद गाड़ी आगे बढ़ा देते हैं।

कस्बे की कोठी की वाटिका अब फूलों और बेलों से चप्पा-चप्पा भर गई है···।···गर्मी की पदचाप भी उधर जाने से कतराती है।

अचानक फूलों के झुरमुट में से कल्याणी रंग बिरंगी साड़ी में उभर पूछती है—'कैसा चल रहा है जज साहब ?'

'ठीक ही है कल्याणी। इस छोटी सी तुम्हारी वाटिका से चन्द महक भरे क्षण जुटाकर बाकी दुनिया से बचा रहता हूं।···और बाकी दुनिया में है क्या ? बड़े-बड़े आडम्बर वाले शब्द—नीचे कर्म मन्दिरों में बिकता धर्म ··, खुदगर्जों द्वारा इश्तहार की तरह बांटी जाती नफरत और कागज के नोटों के लिए नेताओं द्वारा नित्य दफनाई जाती इंसानियत···यही तो है शेष दुनिया।'

—''नहीं कुछ और भी है जज साहब। मजालसिंह द्वारा चलाया जाने वाला कोढ़ियों के लिए अस्पताल···। तुम्हें रिश्वत देने वाले खद्दरधारी द्वारा तुम्हारे इलाहाबाद वाले बगीचे में माली का काम करना। उन सब के अन्दर दाह है···पर तुमने उन सब का रास्ता बदल दिया है ··तुम्हारी

उज्ज्वलता और बढ़ गई है जज साहब।'

"मजाक कर रही हो कल्याणी"—अंबिका प्रसाद दबे स्वर में कहते हैं। पौपी के फूलों से आंचल हटाती हुई कल्याणी पिटूनिया के पीले और नारंगी रंग वाले फूलों में लेट जाती है—"सच कह रही हूं जज साहब। तुम्हारी उज्ज्वलता ही तो मुझे बांधे हुए है···अच्छा अब जाओ और खाना खाओ। दोपहर का एक बज गया है। ये लापरवाही बरती तो फिर नहीं आऊंगी···।'

गर्वित नयन अंबिका प्रसाद पर एक क्षण टिका कल्याणी अदृश्य हो जाती है। धूप में ऊंचे गिरजाघर पर बने सलीब पर लैठा कबूतर कभी गर्दन इधर मटकाता है और कभी उधर, ठीक कल्याणी की मादक पुतलियों की भांति।

●●

तेरी…मेरी…और

"आखिर तुम कहना क्या चाहती हो…?'

उसे लगा कि अन्दर से अहसासी जा रही कातरता से कतराने का एक मात्र सुरक्षात्मक तरीका आक्रोश भरा स्वर ही है · शायद अपनी घुटन और दूसरों के मुंह बन्द करने का एक मात्र तरीका·· एक मात्र जरिया यही है और कर भी क्या सकता है वो…? आदमी, बस्ती·· शहर …महानगर · एक गहरे संत्रास से झुलस रहे हैं · और संत्रास से कौन लड़ सकता है…? कौन लड़ना चाहता है…? यदि ये चीखते हुए शब्द हट जायं तो रह क्या जायगा ? एक मरघट के सन्नाटे के सिवाय…! … मानस बुद्धि…चित—अहंकार··ज्ञान और कर्म…सब ही असहाय रह जाते है…! …आवाज उठाई नहीं कि छुरा पीठ में…धप्प।

इच्छाओं के मृग दौड़े नहीं तो स्वयं तीर के सामने पहुंच जायेगे…इसे क्या आत्म हत्या की संज्ञा नहीं दी जायेगी··?

चुम्बक को लोहा खींचता है…नौकरी तलाशता आदमी, सफेद कालर और मसनवी ग्लेमर के मृगजाल में फंसा आदमी जहां इक्ट्ठा हो जाता है··वहां नगर…महानगर…बस जाते हैं। चिमनिओं के धुयें की तरह संत्रास आदमी के अन्दर सुरसुराता है· टूटता आदमी सहारा खोजता है·· पर सहारा है कहां…? एक लम्बी लंगड़ी भीड़ सड़क पर रेंगती है।…बस के हार्न से घबरा के भीड़ छितराती है।·· कोई खुली नाली में लुढ़कता है। फिर मुस्कुराता हुआ रूमाल से मुंह पौंछता अन्दर की कुरेदन को सिगरेट के टोंटे की तरह दबा के बुझा देता है…। फिर चल पड़ती है··· भीड़ !

खुले आकाश वाले गांव·· धूल भरे कस्बे···वहां का सूरज लाल है और चांदनी में मादकता है। पर भीड़ को रोटी चाहिए। आदमी के अनगिनत क्रेज वहां नदारद रहते हैं···! रोजगार नही होगा तो आदमी का सामान्य संसार कैसे चलेगा··? पोरों पर उभरती टीस को नकारता आदमी ··फूल के लिए छिल जाता है पर फूल हाथ की पहुंच तक आते-आते सूख के टूक-टूक हो जाता है। एक खिसियाहट से चित्त भर जाता है। कागज के फूल खिड़की रहित चाल के कमरे में पसीन से तर हो जाते हैं।

कितनी आसानी से कह दिया कविता ने·· मैं क्या जानूं···? तुम्ही तो कह रहे थे कि···! वो फिर बिफर उठता है···! गरम नहीं होता तो क्या करता । जब भी कहा, हो जाने या कर पाने का विश्वास उसे नहीं था ! फकत मिठास भरी रात को वो फीका नहीं करना चाहता था ··अन्यथा कड़वाहट के मध्य आदमी के लिए औरत-गोश्त और हवस का रिश्ता भर रह जाती है। आदमी खण्डहर में सपना देख लेता है पर औरत हर ईंट का मूल्य पूंछ सिर ठोकती है।

वो क्या दूसरों की जरूरत को महसूस नहीं करता है···?·· करता है ··पर अपनी विवशता को ठीक सामने उपहास के साथ मुस्कराते देखने से कतराता है, लाचारी को क्रोध की चैनल में मोड़ देता है···!·· घर के हर काम को दूसरे दिन के लिए टाल जाना···सिगरेट के टुकड़ों से मुंह तक भर जाती ऐशट्रे ···कहानी के बहकते हुए लम्हो मे बच्चो के शोर के लिए कविता पर उसका दहाड़ उठना···!·· सब्जी ते टमाटर की कटौती कर पोस्टेज का जुगाड़ और उस पर खेद की स्लिप सम्भाले उसी के लिफाफे में लौटती रचनायें !···स्साले पढ़ते भी नहीं हैं शायद···!·· नाम चाहिए···चमचागिरी चाहिए···। वो बड़बड़ाता···कविता की आंखों में हंसता उपहास देख नसे तन जातीं···!

चार आदमी के परिवार को कुल बारह किलो गेंहू राशन से···बाकी ···बाजार से खरीदो···। भाव ? दो रुपए साठ पैसे जिसमें कूड़ा भी शामिल है···और डी डी टी भी ··। कविता कहती···तुम लिखो पर सिगरेट छोड़ दो···सिगरेट तुम्हें नुकसान करती है···और खर्चा भी···।

काफी संजीदा होकर कहती कविता पर वो अनसुना कर जाता···। लगता उसकी अल्प कमाई पर व्यंग्य है··फिर सोचता सही ही तो कह रही थी···! पर सिगरेट छोड़ दे तो लिख नहीं पाएगा···!···लिख नहीं पाएगा तो जिन्दगी की शतरंज पर दिन प्रति दिन उभरती शह··मात में बदल जाएगी।···एक शून्य उसे कैद कर लेगा, वो क्लर्क का क्लर्क रह जाएगा।

आगे-पीछे ऊपर नीचे··हर तरफ अन्धेरे रंग की काइया शिलायें उसे छूती हैं···। अन्दर की लाचारी से बचने के लिए अपने बदहवास अहसासो को छुपाते हुए वो अपने इकलोते कमरे को ताकता है। कविता सिर झुकाए बैठी है···कुर्सी का कुशन नीचे की ओर धंस गया है··! उसका सांवला रंग अब स्याह होता जा रहा है···चावल बीनने के लिए अब चश्मा लगाना पड़ता है।···चावल देख अमित चिल्लाता है मैं चावल नहीं खाऊंगा···!···कविता गुस्से से देख दहाड़ती है—खाएगा कैसे नहीं···? खत्ती गाड़ दी है न तेरे बाप ने। वो···करवट बदल लेता है···। काश उसने शादी न की होती····· फुटपाथ पर लैम्प पोस्ट के नीचे लिखने में भी परेशानीं नहीं होती। इस चिमगादड़खाने में···इस भीड के साथ नहीं जीना पडता···।···हर रोज अखबार···रेडियो· टीवी में समाजवाद की दैनिक जोरदार वर्षा के बाद एक दुलहनी परिवेश की कल्पना कल के लिए संजोता है·· पर समाज बढ़ जाता है · संत्रास और गाढ़ा हो जाता है पर समाजवाद कहीं नजर नहीं आता···!

भीड़! एक बहुत बड़ी भयानक भीड़ जो निजाम बदल देती है चांदनी चौक से दरियागंज की ओर मुड़ जाती है···। रास्ते में चार परिवार-नियोजन केन्द्र मातमी सन्नाटे के साथ जागते रहते हैं·· पर भीड़ खत्म नहीं होती है। बस के लम्बे इन्तजार में वो फुटपाथी बुक-स्टाल को टटालता है ···दो-चार हो सही पत्रिकायें दिखायी पड़ती हैं··और उनके क्यू में अनगिनत लखक उम्मीदवारों की भीड़ जिनको सहज ही छीनते हुए निकल जाती है चन्द नामी लेखकों की पालकी···चमचों की टनटन करती साईकिलें। संपादकों के युग प्रवर्तक अन्दाज से कलम की ताल मिलाते···लेखकों की टोली··हाथ में गर्मागरम चिल्लम थामें···। अन्यथा बेटे लिखते

रहो…बी और सी ग्रेड पत्रिकाओं में…घिसते रहो कलम…। उसे लगता कि लेखन के संत्रास पर दो एक अच्छी कहानियां लिख सकता है…चुन चुनकर मुहावरे…फिकरे इस्तेमाल कर सकता है। अपने अन्दर की भड़ास निकाल सकता है…।…न छापें स्साले। अब की फंड से रुपया निकाल संग्रह निकाल देगा…चल गया तो खुद लिखेंगे कहानियों के लिए। ·· पैकिट खोलता है।…खाली…।…सुबह ही खरीदा था पैकिट…नन्दू कहां है…?…माचिस की तीली से दांतों के बीच दबे मैल को सरकाते हुए पूछता है…?

—"मिट्टी का तेल लेने गया है दो बजे से…आज नहीं मिला तो मारा जाएगा।"…कविता भावहीन चेहरे से कहती है…।·· गर्म दोपहर में बंद खिड़की और घूमते पंखे के साथ कमरा भट्टी सा जलता लगता है…! यही तो संत्रास है इस महानगर का। उसे लगता है कि बारह साल के नंदू का जून की कड़ी दोपहरी में खुली कतार में खड़ा होना एक निर्मम सत्य है·· जिसे वो अपनी कहानियों में आसानी से एक्सप्लाईट कर सकता है …इस सरकार को जिम्मेदार ठहरा सकता है। समाज को गालियां दे सकता है…। कविता भावशून्य सी कड़ियों को ताक रही है··मानो अपने उपहास को निगल जाना चाहती है · । पैर में स्लीपर डाल बाहर निकल पड़ता है…। काफी चिनचिनाती धूप है चरखाँ वाला की पथरीली गलियों में। शीशे की तरह साफ धूप में मिट्टी के तेल के लिए एक लम्बी कतार अपना पसीना बहा रही है दुकान तीन के बाद खुलेगी··। भीड़ में सनसनाहट है। लोग टस से मस नहीं हो रहे हैं…आज चूके तो पन्द्रह दिन का तेल ब्लैक में ··चार रुपए लिटर खरीदना पड़ेगा··।

वो नंदू को तलाशता है। धूप से वचने के लिए टीन का डिब्बा नंदू ने सिर पर संभाला हुआ है ·।…बाप को देखा तो पसीने से भरे चेहरे पर रुआंसापन उमड़ आता है ।…उसे थपथपा कर एक डिप्लोमेट की तरह मुस्कुराता है,…"जा…तू…जा घूम आ इधर-उधर।"·· जेब से रुपए का नोट निकाल उसे थमाता है…। "पांच विल्स राएल ले लियो · और अपने लिए चार टाफी।" नन्दू के अन्दर फुर्ती संचारित हो उठती है…कूदता हुआ चल पड़ता है…। वो पीछे की ओर देखता है··कतार कोयले वाले की

दुकान तक पहुंच गई थी ।

मुंह में टाफी दबाए नन्दू शीघ्र ही लौट आता है····"आपजाओ···मैं तेल ले आऊंगा।" उसका चेहरा गर्मी से लाल है पर चित्त की प्रसन्नता ने फूल का सौरभ छुआ दिया है।

"तू ले आएगा ? बड़ी धूप है।" वो कहता है और टीन नन्दू को पकड़ा चल पड़ता है। भारत सरकार की कर्मचारियों को डियरनेस अलाउन्स से बहलाने वाली डिप्लोमेसी उसने भी सीख ली है। अन्दर जमीन पर दरी बिछाए कविता सो रही है···पदचाप सुन उठ बैठती है····"नन्दू नहीं आया ?"

"आ आएगा अभी···वो माना ही नहीं···बोला·· मैं ही लाऊंगा।" कविता सपाट भाव से देखती है···उसे लगता है कि आधे सच और झूठ को उसने पढ़ लिया है। एक नई सिगरेट सुलगा वो महानगरीय संत्रास पर लिखना शुरू करता है गर्म पथरीली सड़क···लम्बी कतारें·· उमस ···पिघले और स्याह होते सौन्दर्य ··नकली दवाइयां···संग दिल डाक्टर ···बेकस लेखक ··सरमायदार प्रकाशक···धुंध में फंसा एकाकी सूर्य और धुंए से मुरझाता चांद···।

"बस तुम लिखते ही रहोगे या कुछ करोगे भी···? लड़का जाने कब से धूप में मर रहा है···और तुम। अमित कहां है दोपहरी से पता है···? कुछ फिक्र है तुम्हें ?"

तीखी नजरों से कविता को घूरता है···कहना चाहता है कि इस शहर के समस्त संत्राम से भारी मेरे लिए तुम्हारा वजूद है तुम नहीं होती तो कमरेकी भीड़···परेशानी···।

नन्दू मिट्टी के तेल का टीन धप्प से फर्श पर रखता है···उसकी बुशर्ट पसीने से लथपथ है ··कविता तोलिये से उसकी देह पोछती है···। उसकी आंखों में गहन हिकारत का पुट है···।

दो नफरतें···दो बच्चे···फिर भी एक महानगर के एक सकरे कमरे में जीते रहेंगे ··क्यों ? क्या आधार है इस जुड़े होने का···? वो लिखता है नई सिगरेट सुलगाता है···धीरे से दरवाजा खोल धूल में लथपथ अमित अन्दर घुसता है।

"···कहानी लिख रहे हो पापा···? किसकी···, तोतला प्रश्न उसे गुदगुदा देता है·· माहौल में हलकी मीठी गन्ध तैर जाती है । कहानी··· हां···लिख रहा हूं ··तेरी मेरी···और···।

खेल कर लौटा अमित · किस कुंठा से भीग कर दरवाजे पर चोर की तरह खड़ा था ? बुढ़ापे से पहले ही कविता कैसे काली हो रही है ?··· जिस्मकी मादक गन्ध···एक हीक में बदल गई है। कविता क्यो नहीं संवरती है ? लिखने की हवस और सिगरेट की तलब में चार टाफी थमा वो खुद कैसे सहज ढंग से अपनी ही औलाद का शोषण करता है। कुंठाएं! शोषण ! वेकली ! रिश्ते और समीकरण जमी है चार दीवारी के सकरे कमरे में। महानगर के अन्धैरेपन को प्रगाढ़ करती हुई, सड़कों पर जलते सोडियम नियान लैम्पों को नकारती हुई···। आखरी सिगरेट सुलगा वो कलम की तरफ ताकता है, जिसके नुकीले निब में उसके दिल का हर गुब्बार संभला हुआ था ··यह आखिरी सिगरेट भी खत्म हो जाएगी — वो खुद भी थक जाएगा पर भीड़ चलती रहेगी···कुंठाये प्रखर होती रहेंगी। ज्यादा से ज्यादा रोशनी और ··अधिक से अधिक अन्धेरे से भरी ·वस्तियों और गलियों का जन्म होता रहेगा···अनन्त के हर क्षितिज पर महानगर का विराट अनन्त बसता रहेगा । हर महानगर की कहानी···हर काल में···अधूरी रहेगी···!

●●

अस्तित्व से परे

मास्टर ए. व्ही. पराजंपे उद्यान की शोभा में खोजाते हैं। कल्पना खंडाला की घाटियों में ले जाती है उन्हें, जहां गहरा कोहरा अब भारी होकर वादियों में पर्त दर पर्त बैठ रहा होगा और सूर्य की किरणें अनगिनत बूंदों में इन्द्रधनुषों का सृजन कर रही होंगी। मानो संसार में रंग ही रंग हों स्याह कुछ भी नहीं ! दुख शायद कुछ है भी नहीं ··आधार-हीन सपनों की गर्म राख भर ही तो है। और सपनों का सृजन करता है मन। आदर्शों का विन्यास करती है बुद्धि। मन और बुद्धि की तकरार ही तो दुःख है। किसी को गीता पढ़ने में सुख की अनुभूति होती है और कोई एश्वर्य के स्वर्ग में भी स्वयं को व्यथित महसूस करता है।

संस्कृत सुधारस की रचना करते समय उन्होंने स्वर्ग के उद्यान की कल्पना की थी किन्तु धरती पर अपने ही नाम की पट्टिका लगे बंगले में स्वर्ग की वाटिका से अधिक जातियों के फूलों को देख सकेंगे, बेलों की पेचों पर विस्मित हो निहारते रह जाएंगे इस यथार्थ की कभी उन्होंने कल्पना नहीं की थी। यथार्थ उन्हें अचानक ही आतंकित कर उठा था मास्टर कहीं तू मय दानव की कृत्रिम नगरी में तो नहीं आ-गया है भटक कर ! जिंदगी इतनी नर्म, फूलों से भरी, गंध युक्त और जादुई हो जाएगी कि कर्म अर्थ हीन और कल्पना यथार्थ होकर अलौकिकता खो देगी, कभी सोचा ही नहीं था। अपना ही नया घर विदेश सा लगता है। आज तक जो पढ़ा, जाना, गुना या संप्रेषित हो मिला और जिस ज्ञान और तप को जिंदगी की सीढ़ी समझा वह अनायास ही वैभव के मध्य धूल के तिनके की तरह अवांछित हो उठा। क्यों ? कैसे ? पर अपनी बात कहें किससे ? हर

कोई तो इसी को आधार मान नई जिंदगी में रम गए हैं। श्रीलक्ष्मी को तो घर के अन्दर से ही फुरसत नहीं है। माला स्वयं को नये परिवेश में परिपक्व करने की चेष्टा में पढ़ती रहती है फैशन की पुस्तकें। शाम को इंगलिश और हिन्दी कनवरसैशन के लिए टीचर आता है। और नलिनी! उसे अब कालेज से मतलब ही क्या। भाई के सूरज के सहारे, चांद सहज ही मिल जाने का यकीन संजोए सुख भोग से ही फुर्सत नहीं है।

तमाम आश्चर्यों के मध्य अपने आक्रोश या सताप में डूब जाते और उभर आती दया···प्रकाश के लिए। जिसने सारे साजो समान की व्यवस्था की हैं, वह खुद खड़ा रहता है सीलन भरे स्टडुयूज में। झुलसते हुए प्रकाश पुंजों के तले···प्रतिक्षण यातना सहता रहता है। जेल की कोठरी से ज्यादा यातना भरी जगहों पर उछलता, कूदता और हंसता हुआ प्रकाश स्वयं को भूला हुआ नट की तरह करतब करता रहता है·· प्रशंसा भरी आंखें उसे उत्साहित करती रहती हैं पर यातना का मूल्य इतना हो सकता है इसका अन्दाजा नहीं किया था कभी। काशी की तिलमिलाती धूप में दो किलोमीटर रिक्शा खींचने पर पसीना चूते चालक की गंध से बचते हुए लोग एक या दो रुपया पकड़ाने में भी कतराते हैं। और उतनी ही मेहनत के प्रकाश को मिलते हैं लाखों और घरवालों के लिये आगाखान के महल का सुख ··तलहीन डनलप के गद्दे···विदेशी टेलीविजन, वीडियो, मंहगी पेन्टिंग्स, मुलायम गलीचे और झाड़फानूसों से झरती चांदनी। रिक्शे वाले के बच्चे तकरीबन वस्त्रहीन और स्वयं को धूप में सुखाते हुए तीन बार नमक रोटी के लिए तरसते हैं। कला का अर्थ क्या सिर्फ चलचित्र के रुप में ही मंहगा होता है? अनायास मराठी भूल उनके अधर रामचरित मानस का दोहा गुनगुनाने लगते हैं:—

सुनो भरत भावी प्रबल विलख कहें मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ॥

स्कूल की मास्टरी और फिर हेडमास्टरी के मध्य गृहस्थी खींचने में अथक संघर्ष करते रहे थे। जब पहली संस्कृत पुस्तक प्रकाशित हुई तो प्रकाशक से प्राप्त हजार रुपये के चैक को कांपते हाथों से थामे निरखते रहे थे। श्री लक्ष्मी को चैक सुपुर्द कर अन्दर के कंपन से मुक्त हो पाए थे।

आज उस दो साल के अथक परिश्रम द्वारा पाए अतीत के पुरस्कार पर उन्हें हंसी आती है। सरस्वती साधना के अवमूल्यन पर आज छुपके वे हंस सकते हैं। धरती की गति और घूमने की दिशा या न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त यद्यपि आज भी बरकरार हैं परन्तु मानवीय चिंतन, चिंतन की दिशा, आकर्षण एवं अपकर्षण सब कुछ बिखर गए हैं। जिंदगी भर संस्कृत पढ़ पढ़ाकर चांद आज भी पूज्य है, सूरज देवता है और धरती बसुंधरा। इसीलिए मास्टर परांजपे आईस्टीन के सापेक्ष सिद्धांत को समझने में असमर्थ हैं और अखबार पढ़कर भी विश्वास नहीं कर पाते हैं कि आदमी चांद पर उतर चुका है और संस्कृत काव्य में रस चुआता शशि मात्र एक चट्टानों का समुद्र है।

युग युगांतरों से वर्णित ओर मान्य को कैसे झुठलादें ! चांद तो सौंदर्य का प्रतीक है और शिव की जटाओं में उलझा हुआ प्रकाश दर्प··· देवता···। राहू केतु से व्यथित···काव्य प्रेरणा स्रोत।

श्रीलक्ष्मी परिवर्तन से अभिभूत अपने पति को जिसकी उसने पार्वती के रूप में सदैव पूजा की और अपूर्ण कार्य को सम्पूर्णत्व प्रदान किया है आज सहज ही बुद्धू घोषित कर सकती है। किन्तु श्रीलक्ष्मी बदले हुए परिवेशमेंभीअपनी सम्पृक्तव्यवहार कुशलता में चूककर ओछेपन की सीमा में प्रविष्ट नहीं करती है। जैसे भाषा की अडिग व्याकरण होती है वैसे ही श्रीलक्ष्मी के व्यवहार की संहिता है···आचार है। इसलिए उद्वेलित पति को करुण दृष्टि से निहार ममता वर्षा कर मौन रह जाती है? क्या करे कि सब के साथ चल सकें, जी सकें? जब है तो भोगने से इन्कार क्यों? कितने बलिदान और तरसन के बाद मिला है सब कुछ।

मास्टर परांजपे स्थिति पर विचार करते रेशा-रेशा अलग कर तत्व तक पहुंचना चाहते—ऊपर उठने के लिए सोपान का एक सिलसिला होता है या वैज्ञानिक चमत्कार या उपलब्धि ! पैसा व्यापार, विद्वता से आने वाली चीज है। शनिवार पैठ से औंध गांव तक मटक-मटक कर बहरुपिए क्या पाते थे—दुर-दुर या चन्द सिक्के। अभिनय की सीमा थी स्कूल या आयोजन। वहां कलाकार को यश मिलता था·· मुजरे की तरह रुपया लुटाया नहीं जाता था। यहूदी की बेटी, राजा हरिशचन्द्र···लैला मुजनूं भी मंडलि-

यों द्वारा प्रदर्शित होने पर देखे थे पर रात चमकते ही चेहरे अगर जुगनू लगते थे तो दिन में वे कांक्रोच से दिखाई देते थे। आज तो हर सिद्धांत उलटा लगता है। थाने का सिपाही पूज्य और प्रोफेसर को गली मे लड़के पीटत हैं। संस्कृत किसी विदेशी भाषा से भी कम जानी जाती है। तस्कर समाज के माननीय व्यक्ति हैं क्योंकि उन्हीं की दौलत से चुनाव लड़े जाते हैं और धर्मस्थल बनते हैं। शायद लोग दर्पण को पीछे से देख अपनी शक्ल भूल गए है। सात पुस्तकें संस्कृत मे और दो मराठी में लिखकर स्वयं को बहुत महत्वहीन महसूस करते हैं मास्टर परांजपे। शाकुंतलम् अभिज्ञान, मेघदूत तो जबर्दस्ती कोर्स में ठूंस दिए जाते हैं। संस्कृत तो थर्डलैंग्वेज के रूप में विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है। अन्यथा पढ़ना तो उन्हें अंग्रेजी ही है ··नौकरी पाने के लिए। सभ्य कहलाने के लिए। किन्तु विज्ञान अंग्रेजी में पढ़कर भी किसी ने हिन्दुस्तान को कुछ नहीं दिया। जिन्हें पुरस्कार मिले वे भी अमेरिका में जा बसे। यहां अंग्रेजी की सौत, विज्ञान को सिर्फ नौकरी की अफीम चटाती है।

पर एक दूसरा पहलू भी है। मास्टर परांजपे भी उससे अनभिज्ञ नहीं हैं। अगर मास्टर परांजपे की धारणा पर चलता घर तो पूरा परिवार उनकी लिखी संस्कृत पुस्तकों का तकिया लगा फुटपाथ पर सोता। वो तो श्रीलक्ष्मी थी जो हर व्यवस्था संभाले रही। जब जेल की कोठरी में जा बैठे मास्टर परांजपे, राष्ट्रीय आन्दोलन में बन्दी होकर तो श्रीलक्ष्मी ने ही घर सम्हाला। जेल से निकले तो राष्ट्रीय संस्थान में भाग दौड़-कर काम दिलवा दिया अन्यथा पुनः जेल में पहुंच पेट भरने के अलावा कोई साधन ही कहां था मास्टर परांजपे के पास। मास्टर जी तो कालीदास की व्यथानुभूति में ही डूबे रहते और चारों तरफ गोदी में प्रकाश को संभाले श्रीलक्ष्मी दौड़ती रहती उनकी प्रतिष्ठा को घर-घर पहुंचाने के लिए। दो बार जेलयात्रा कर मास्टर जी ने तो अपने कर्तव्य से मुक्ति पाली। आजादी मिली तो भीड़ में खोए राष्ट्रगान सुनते विभोर रहे। तब हाथ पकड़कर मंच तक खींच कर लाई थी श्रीलक्ष्मी···इतने दबते क्यों हो। तुमने तो सबसे ज्यादा जेल काटी है।

इनाम में मिली सरकारी स्कूल की हैडमास्टरी से ही संतुष्ट

हो गए मास्टर परांजपे। श्रीलक्ष्मी जाती, भागती रही उनकी जगह पर और वे रचते रहे नव काव्य। तब प्रकाश स्कूल में पढता था। जबरदस्ती बनते सभाओं के सभापति। बार-बार श्रीलक्ष्मी से कहते—'मुझे छोड़ो, मैं तो कवि और अध्यापक हूं। आजादी की लड़ाई खत्म हो गई और मैंने योद्धा का बाना उतार दिया। अब क्यों रहे सभा और जलसों से मेरा मतलब।' पर श्रीलक्ष्मी नहीं मानती। मास्टर परांजूपे समझाते ही रह जाते —"भारत स्वतन्त्र हुआ। अब मेरा काम ही क्या ?"

कुछ ही दिनों बाद श्रीलक्ष्मी ने घोषणा की—"अब घर बदलेंगे। कब तक चाल में रहें।" तुम्हारे सारे जेल के साथी कोठियों में हैं, कारों में चनते हैं और तुम···! फिर कुछ सोचकर बोली थी- "मुझे ही करना होगा कुछ नहीं तो जहाज का पंछी जहाज पर ही रह जाएगा।"

श्रीलक्ष्मी की फुर्ती देख चकित रह जाते। विस्मय में डूबी आंखों को पर शीघ्र ही सामान्यता की तलहटी में ले आते। नर्क की बादशाहत की जगह स्वर्ग की जेल उन्हें पसन्द रहती जहां खामोशी अपने पंखों पर रंग-बिरंगे सपने ··पलाश के फूल और रात की रानी की गंध लिए उनको काव्य रस की ओर उत्प्रेरित करती रहती। मास्टर परांजपे के इंसान के पास आचार, विचार अनुशासन एवं सरस्वती साधना की इतनी महत्ता थी कि जीवन की होड़ वाली भागदौड़ की पगध्वनि पर भी वे कान नहीं दे पाते। श्रीलक्ष्मी के निरंतर श्रम और जी तोड़ कोशिशों को मुग्ध भाव से सराह कर अपने में डूब जाते। महसूस करते कि दाम्पत्य में पूरक भाव और लगन में वे काफी पीछे हैं और उनका लंगड़ापन सिर्फ श्रीलक्ष्मी के कारण छुपा हुआ है। इस काल में भी आध्यात्मिक एवं निर्लिप्त जीवन जीने की सामर्थ्य का स्रोत श्रीलक्ष्मी है जो भौतिक विधाओं से परिपक्व, उन्हें प्राप्त करने में दृढ़ संकल्प और पेचीदा मोड़ों पर नियंत्रित है···यहां तक कि छूटे हुए लोगों को भी अपने बराबर चलाए रखने में भी समर्थ है। स्वयं को वे एक सीधी-सादी सरल रेखा के रूप में क्षीण अस्तित्व के रूप में निस्प्रह स्वीकार लेते। श्रीलक्ष्मी को वे विलक्षण विधाओं से ओतप्रोत पाते। उन्हें लगता कि श्रीलक्ष्मी के पास रूप ही नहीं मादकता भी है और उसकी सुरक्षा की क्षमता भी। श्रीलक्ष्मी को अनुप्रस्थों से लैस और लोचभरी पाते जो आसानी से

यों द्वारा प्रदर्शित होने पर देखे थे पर रात चमकते ही चेहरे अगर जुगनू लगते थे तो दिन में वे कांक्रोच से दिखाई देते थे। आज तो हर सिद्धांत उलटा लगता है। थाने का सिपाही पूज्य और प्रोफेसर को गली मे लड़के पीटत हैं। संस्कृत किसी विदेशी भाषा से भी कम जानी जाती है। तस्कर समाज के माननीय व्यक्ति हैं क्योंकि उन्हीं की दौलत से चुनाव लड़े जाते हैं और धर्मस्थल बनते हैं। शायद लोग दर्पण को पीछे से देख अपनी शक्ल भूल गए है। सात पुस्तकें संस्कृत मे और दो मराठी में लिखकर स्वयं को बहुत महत्वहीन महसूस करते हैं मास्टर परांजपे। शाकुंतलम् अभिज्ञान, मेघदूत तो जबर्दस्ती कार्स में ठूस दिए जाते हैं। संस्कृत तो थर्डलैंग्वेज के रूप में विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है। अन्यथा पढ़ना तो उन्हें अंग्रेजी ही है ··नौकरी पाने के लिए। सभ्य कहलाने के लिए। किन्तु विज्ञान अंग्रेजी में पढ़कर भी किसी ने हिन्दुस्तान को कुछ नहीं दिया। जिन्हें पुरस्कार मिले वे भी अमेरिका में जा बसे। यहां अंग्रेजी की सौत, विज्ञान को सिर्फ नौकरी की अफीम चटाती है।

पर एक दूसरा पहलू भी है। मास्टर परांजपे भी उससे अनभिज्ञ नहीं हैं। अगर मास्टर परांजपे की धारणा पर चलता घर तो पूरा परिवार उनकी लिखी संस्कृत पुस्तकों का तकिया लगा फुटपाथ पर सोता। वो तो श्रीलक्ष्मी थी जो हर व्यवस्था संभाले रही। जब जेल की कोठरी में जा बैठे मास्टर परांजपे, राष्ट्रीय आन्दोलन में बन्दी होकर तो श्रीलक्ष्मी ने ही घर सम्हाला। जेल से निकले तो राष्ट्रीय संस्थान में भाग दौड़-कर काम दिलवा दिया अन्यथा पुनः जेल में पहुंच पेट भरने के अलावा कोई साधन ही कहां था मास्टर परांजपे के पास। मास्टर जी तो कालीदास की व्यथानुभूति में ही डूबे रहते और चारों तरफ गोदी में प्रकाश को संभाले श्रीलक्ष्मी दौड़ती रहती उनकी प्रतिष्ठा को घर-घर पहुंचाने के लिए। दो बार जेलयात्रा कर मास्टर जी ने तो अपने कर्तव्य से मुक्ति पाली। आजादी मिली तो भीड़ में खोए राष्ट्रगान सुनते विभोर रहे। तब हाथ पकड़कर मंच तक खींच कर लाई थी श्रीलक्ष्मी···इतने दबते क्यों हो। तुमने तो सबसे ज्यादा जेल काटी है।

इनाम में मिली सरकारी स्कूल की हैडमास्टरी से ही संतुष्ट

हो गए मास्टर परांजपे। श्रीलक्ष्मी जाती, भागती रही उनकी जगह पर और वे रचते रहे नव काव्य। तब प्रकाश स्कूल में पढ़ता था। जबरदस्ती बनते सभाओं के सभापति। बार-बार श्रीलक्ष्मी से कहते—'मुझे छोड़ो, मैं तो कवि और अध्यापक हूं। आजादी की लड़ाई खत्म हो गई और मैंने योद्धा का बाना उतार दिया। अब क्यों रहे सभा और जलसों से मेरा मतलब।' पर श्रीलक्ष्मी नहीं मानती। मास्टर परांजपे समझाते ही रह जाते —"भारत स्वतन्त्र हुआ। अब मेरा काम ही क्या ?"

कुछ ही दिनों बाद श्रीलक्ष्मी ने घोषणा की—"अब घर बदलेंगे। कब तक चाल में रहें।" तुम्हारे सारे जेल के साथी कोठियों में हैं, कारों में चलते हैं और तुम···! फिर कुछ सोचकर बोली थी- "मुझे ही करना होगा कुछ नहीं तो जहाज का पंछी जहाज पर ही रह जाएगा।"

श्रीलक्ष्मी की फुर्ती देख चकित रह जाते। विस्मय में डूबी आंखों को पर शीघ्र ही सामान्यता की तलहटी में ले आते। नर्क की बादशाहत की जगह स्वर्ग की जेल उन्हें पसन्द रहती जहां खामोशी अपने पंखों पर रंग-बिरंगे सपने ··पलाश के फूल और रात की रानी की गंध लिए उनको काव्य रस की ओर उत्प्रेरित करती रहती। मास्टर परांजपे के ईमान के पास आचार, विचार अनुशासन एवं सरस्वती साधना की इतनी महत्ता थी कि जीवन की होड़ वाली भागदौड़ की पगध्वनि पर भी वे कान नहीं दे पाते। श्रीलक्ष्मी के निरंतर श्रम और जी तोड़ कोशिशों को मुग्ध भाव से सराह कर अपने में डूब जाते। महसूस करते कि दाम्पत्य में पूरक भाव और लगन में वे काफी पीछे हैं और उनका लंगड़ापन सिर्फ श्रीलक्ष्मी के कारण छुपा हुआ है। इस काल में भी आध्यात्मिक एवं निर्लिप्त जीवन जीने की [illegible] का स्रोत श्रीलक्ष्मी है जो भौतिक विधाओं से परिपक्व, उन्हें [illegible] में दृढ़ संकल्प और पेचीदा मोड़ों पर नियंत्रित है···यहां तक कि [illegible] लोगों को भी अपने बराबर चलाए रखने में भी समर्थ है। [illegible] सीधी-सादी सरल रेखा के रूप में क्षीण अस्तित्व के रूप में [illegible] लेते। श्रीलक्ष्मी को वे विलक्ष[illegible]ओं से ओतप्रोत [illegible] श्रीलक्ष्मी के पास रूप ही न[illegible] भी है और [illegible] भी। श्रीलक्ष्मी को अनुप्र[illegible] और [illegible]

कहीं भी ईशान बदलने में समर्थ हो। गहराई छूने की सामर्थ्य के साथ श्रीलक्ष्मी के पास भावनाओं के कोमलतम क्षितिज और रास्ते की पहचान के मौलिक दिशा सूचक भी थे। उन्हें लगता कि श्रीलक्ष्मी की जगह कोई और औरत होती तो वे किसी गांव की बदसूरत पाठशाला में टाट पर बैठे हुए पढ़ा रहे होते।

आजादी की लड़ाई में लाठियां खाने वाले कंधे मास्टर परांजपे के पास थे पर फूल माला पहनने के लिए गर्दन झुकाने और आभारवश मुस्कराहट प्रदर्शित करने की कला से वे पूर्ण अनभिज्ञ थे। उसके लिए वे पूर्णतः श्रीलक्ष्मी पर आश्रित थे और उस पूरक कार्य के हेतु श्रीलक्ष्मी को उन्होंने सदैव अपने निकट पाया। सदाशिव पेठ की अंधेरी खोली में उनकी कलम लता पुष्पों को छूती हुई भावना की वीणा को झनझना देने वाली स्थिति तक पहुंचा देती किन्तु पुस्तक प्रकाशक तक कैसे पहुंची, कोर्स में कैसे उतर आई और क्या भाव-ताव चले उसका कुछ पता उन्हें नहीं रहता। पर मास्टर परांजपे के मधम-मधम व्यक्तित्व को लेकर श्रीलक्ष्मी कभी कुड़कुड़ाई नहीं अपने तेज से लज्जित नहीं किया।

प्रकाश की कमियों पर पति की झुंझलाहट परख उसकी पढ़ाई का भार भी श्रीलक्ष्मी ने स्वयं ही अपना लिया—"तुम छोडो···क्यों लफड़े में पड़ते हो, उसे मैं संभाल लूंगी।" प्रकाश के गुच्छेदार बालों पर उनकी कुपित दृष्टि को भांप बोली थी —'युवा वर्ग के बदलते परिवेश को नकार कर तुम प्रकाश को ब्रह्मचारी के वेश में तो रख सकते हो पर मन का प्रदूषण जहरीला हो जाएगा। नए बालों का यही चलन है। हर फिल्म का हीरो और आम जवान लड़का ऐसे ही बाल रखता हैं।'

'फिल्म क्या शिक्षा लेने के लिए है श्रीलक्ष्मी ? वह तो मात्र मनोरंजन है जिसका जीवन में कही भी मेल नहीं है,' धीमी आवाज में मास्टर परांजपे ने प्रतिवाद किया था।

'है और नहीं भी ! मराठी मैं नहीं जानती पर आधुनिक युवा वर्ग का रूप अंग्रेजी में ऐंग्रीयंग मैन कहलाया जाता है। सड़क छाप स्टेज पर मर्यादा पुरुषोत्तम की रामलीला या मन्दिर के प्रांगण में गंजे पंडित द्वारा ज्ञानेश्वरी की टीका आज के लड़कों को नहीं भाती है। वे संसार के अन्य देशों के युवा

वर्ग की तरह रहना और करना चाहते हैं। सिनेमा वहां एक सुलभ शैक्षणिक माध्यम है। रोकने और टोकने की अति का अर्थ होगा टकराव, जो प्रथकत्व की ओर ले जाता है', लम्बा वक्तव्य था श्रीलक्ष्मी का। अवाक् से ताकते रहे थे मास्टर जी। लगा था कि बहुत पीछे छूट गये हैं। विज्ञान और वैभव, कालदर्शन को बहुत आगे बढ़ा ले गया है और मास्टर परांजपे आज भी किसी गुरु के आश्रम के प्रांगण में युवा नस्ल के आध्यात्मिक विकास की कल्पना में फंसे रहे बस। रात में पति को सरस करते हुए गुद-गुदाया था—'जयदेव ने गीत गोबिन्दम कब लिखा था ? उसे तो तुमने भी सोलह साल की उम्र में कंठस्थ कर डाला। यौवन में रसिकता नहीं होगी तो कब होगी ? आज के वैज्ञानिक युग में मनोरंजन भी एक आवश्यकता है। मनोरंजन सांस्कृतिक हो सकता है, आधुनिक समाज से संबंधित हो सकता है, शालीन और अश्लील हो सकता है। गीत गोविन्दम को भी कोई अखण्ड ब्रह्मचारी अश्लील की संज्ञा दे सकता है किन्तु जीवन में प्यास और प्यार के मध्य वह बहुमूल्य कला वस्तु है ··ऐसा काव्य जो हर स्त्री पुरुष के जीवन में झंकृत होकर उभरता है। एक अमिट स्मृति की भांति ··। आज जीवन की व्यस्तता में समाज वास्तविक पृष्ठभूमि के यथार्थ को स्टेज पर देखता है,···पर्दे पर देखता है। वह विज्ञान के द्वारा मिली उपलब्धि है। जहां कला और कलाकार को एक बड़ा समुदाय देखता और परखता है। कोई सिर्फ देखता है जीवन भर और कोई अपनी कला दिखाता है। कला और उसके सन्दर्भ युग के साथ चमकते हैं···कही-कहीं विकार भी होता है। उसे छोड़ना होता है पर ग्रहण करने के इस माध्यम को छोड़ा नहीं जा सकता है। नकारा नहीं जा सकता।'

लम्बे वक्तव्य के बाद बिस्तर पर पसर श्रीलक्ष्मी ने पति को सहलाते हुए भूमिका से असली मुद्दे तक आने के लिए कहना शुरू किया था—'तुम अपने काम और अपनी-अपनी रुचि में लगे रहो। बच्चों को मुझ पर छोड़ो। कोई काम बिगड़ता भी है तो उसमें मत उलझो। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी···कम नहीं होगी।'

मास्टर परांजपे को लगा कि युग सड़ांध के विष को गले तक रोके रखने की क्षमता और रास्ता श्रीलक्ष्मी ने उन्हें उपलब्ध करा दिया है।

श्रीलक्ष्मी की इसी शक्ति के सहारे ही तो वे बिखरने से रुके रहे। आज भी कैसे मनोवैज्ञानिक वातावरण की संरचना कर सकी श्रीलक्ष्मी।

कभी-कभी स्वयं ही दुविधा में आशंकित हो स्तब्ध रह जाते—बार-बार काजल की कोठरी से किरण जुटाने निर्भीक चली जाती है। कही···। फिर स्वयं ही अपनी भर्त्सना करते—अपनी शक्ति को ही लांछना दी जा सकती है कभी?

शनिवार बाड़ा की विशाल सभा में मास्टर परांजपे का कंधा थप-थपाते हुए कहा था मुख्यमंत्री जी ने—'तुम बहुत भाग्यशाली हो मास्टर भाऊ। तुम्हारी पत्नी तलवार और ढाल दोनों हैं·· पूर्ण समर्थ।' फिर एक फीकापन-सा उभर आया था चेहरे पर मानों प्रधानत्व प्राप्त कर भी कहीं अपनी नारी से असंतोषग्रस्त हों।

अपने व्यक्तित्व के फीकेपन से किसकिसाने वाले ही थे कि चपला सी अवतरित हो गई थी श्रीलक्ष्मी—'कर्णधार तो ये ही हैं। मैं तो मात्र गवरनेस हूं। परछाई।'

उदास से लौट रहे थे मास्टर परांजपे कि थ्री व्हीलर से उतरते ही नए बंगले के गेट पर ही चरणरज ली थी श्रीलक्ष्मी ने—'तुम्हारी आरती उतार कर भी पूजा से संतुष्ट नही हो सकूंगी। कितना मान मिल रहा है तुम्हारे कारण। मुग्ध हैं लोग तुम्हारे मौन गंभीर और सादा व्यक्तित्व से। तुम्हारी कविता—अमृत, भाव विभोर कर रही थी सबको। लोग मजाक कर रहे थे—ताई तुम जरूर अमृत की मानसरोवर झील रही होंगी जिसकी पहचान कर भाऊ साहिब ने पकड़ा दिया वैवाहिक अनुबध। जानते हो तब मैंने क्या चाहा? चाही मृत्यु! क्योंकि जहां कामनाओं का चरम संतुष्ट हो जाए वही तो जीवन का तीर्थ है और जहां देह सार्थकता को छूले उसके बाद शरीर की जरूरत ही क्या है? फिर लगा नहीं। मुझे निर्णय का अधिकार कहां। फिर लगता है कि जो आज प्राप्त है वह शायद कल न मिले।'

मास्टर परांजपे का हृदय विशालता और अपनत्व से परिपूर्ण हो गया था। अपनी ही भर्त्सना अन्दर ही अन्दर कर उठे थे—छी कैसा पातकी है तू! अपनी ही अम्लान नारी पर सन्देह कर सका। शचि···शचि है···

सौन्दर्य और सातिवकता से परिपूर्ण। इन्द्र ही चंचल मन है। राम भी निर्दोष नहीं रहे और एक धोबी के लांछन पर सीता का परित्याग कर बैठे। शायद पुरुष अपनी विशालता में भी नारी के प्रति सदैव शंकित रहा है। बहुत रात तक बाहों में संभाले सहलाती रही पति को श्रीलक्ष्मी और मास्टर परांजपे की अचंचलदेह अनन्त सुख में डूब स्वप्न देखती रही। मास्टर परांजपे भूल गए कि अधेड़ आयु में भी नारी स्वयं को युवा महसूस करने के लिए पुरुष से अल्हड़ता और वासना की आशा करती हैं, समर्पण के लिए आतुर रहती है।

सुबह चार बजे ही अपनी बांहों से पति का सिर हटाते हुए जगाया था—"उठो। अपने बिस्तर पर जाओ। बच्चों ने देख लिया तो क्या समझेंगे।"

उल्लसित मुद्रा में उठे थे मास्टरजी। छड़ी घुमाते हुए भुंला नदी के किनारे-किनारे दूर तक निकल गए थे। डोलची में भर लाए थे अनगिनत सतरंगी सुमन वैभव। आज अपने हाथ से वेणी गूँथ कर श्रीलक्ष्मी का शृंगार करेंगे। श्रीलक्ष्मी लाख सकुचाती और शर्माती रही परन्तु मास्टर परांजपे का कवि हृदय और स्वतंत्रता सेनानी आज दूसरे ही मूड में था। प्रकाश कहीं से कैमरा उठा लाया और दबा दिया क्लिक ऐन मौके पर। कई दिनों बाद छोटे से फ्रेम में तस्वीर लगा कर बुक शेल्फ पर लगा दी गई। प्रमुदित मन से मराठा के लिए नारी पर ओजस्वी कविता लिख कर भेजी थी। स्कूल के मास्टरों ने फब्ती कसी थी—नया रंग चढ़ रहा है भाऊ साहिब पर।

संध्या के समय कविता पर निकली सराहनाओं का अवलोकन कर रहे थे कि श्रीलक्ष्मी ने चश्मा उतार कर मेज पर रख दिया और बांहों के पूर्व स्पर्श के साथ बोली—"तुमने मुझे कितना मान दिया है···बस आज एक बात और मान लो।"

हंस दिए थे मास्टर परांजपे। श्रीलक्ष्मी उनकी स्वाभाविक कमजोरी है। श्रीलक्ष्मी ने केश में उंगली फंसा शंकित भाव से आग्रह किया था—"प्रकाश को नाट्य प्रतियोगिता में बंबई जाने की आज्ञा दे दो।"

अनायास कांपते हुए उठ खड़े हुए थे मास्टर परांजपे। कण्ठ भरभरा

उठा था—"कैसे दे दूं! ···अप्रेल के प्रारम्भ में इम्तहान है।"

श्रीलक्ष्मी ने आर्द्र दृष्टि से निरखा था। एक गहरी पराजय की गली पुतलियों से प्रारम्भ हो अन्दर दूर तक चली गई थी। हिल उठे थे मास्टर परांजपे। जानते थे कि श्रीलक्ष्मी यदि वर्तमान का चित्र खींचना शुरू करेगी तो जेनरेशन गैप, ऐंग्री यंगमैन, घरों में बढ़ते हुए पारिवारिक अंतर्द्वन्द के और जलते हुए सामाजिक परिवेश के चित्र उनके सामने आ जाएंगे और वे महसूस करेंगे कि भारत के आज से वे पूर्ण अनभिज्ञ हैं।

प्रकाश ने श्रीलक्ष्मी को बांहों में दुलारते हुए कहा था—"यू आर ग्रेट ममी!" श्रीलक्ष्मी की आंखों में आंसू उतर आए थे। पति से जबरदस्ती आज्ञा प्राप्त कर बेटे को लेकर वो जुआ खेल रही थी। हार गई तो कुछ बचेगा नहीं। फिर आंसु छुपा गद्‌गद्‌ भाव से कहा था—'कतरा-कतरा अपना तुम्हारे लिए सुखा रही हूं जिससे तुम अपनी कला के ध्येय तक पहुंच सको जो एक उद्देश्य में परिवर्तित हो सके। पर तुम स्वयं को छलना नहीं। नहीं हो सके तो लौट आना।'

प्रकाश चला गया तो सहूलियत बटोर मास्टर परांजते ने पत्नी से कहा था—'तुम कौन सी ज्यामिति की संरचना कर रही हो श्रीलक्ष्मी। मैं ठहरा अदना अध्यापक। साहित्य की उपासना भी बचे खुचे समय में करता हूं। मेरा मन्दिर तो सरस्वती मन्दिर है। पर जब प्रकाश उल्टे-सीधे संवादों वाला नाटक बड़बड़ाता है, मिरगी के रोगी की तरह आहों से भरा अभिनय करता है और कोर्स की पुस्तकों से धूल भी नहीं झाड़ता तो मैं आशंका से भर जाता हूं—यह कौन सी साधना है···?···तुम्हारी यह संरचना मैं समझ नहीं पाता हूं श्रीलक्ष्मी।'

गम्भीर हो उठी थी श्रीलक्ष्मी—'प्रकाश को लेकर जुआ ही खेल रही हूं···यही समझ लो। वह पढ़ेगा भी तो किसी दफ्तर के किरानी से आगे नहीं जा पायेगा। मैं उसे छोटा बनते हुए नहीं देखना चाहती कि कोई कहे या उंगुली उठाये—बाप तो स्वतंत्रता सेनानी और कवि—बेटा मात्र क्लर्क।' दार्शनिक की भांति बोल रही थी श्रीलक्ष्मी—'जीवन उठने के लिए एक जुए की भूमि भर ही तो है। लोग एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए पूरा जीवन व्यय कर देते हैं। क्या पाते हैं? कुछ भी तो नहीं। बस एक ध्येय

पूर्ति के लिए दुख ही दुख सहते हैं। प्रकाश को अभिनय की ओर उत्साहित कर मैं भी एक एडवेंचर की संरचना कर रही हूं। सफल हुई तो लाभ भी है। फिर प्रकाश में अभिनय की क्षमता है, चेहरे पर सौन्दर्य है, आकर्षण है। अगर उसके कदम उधर बढ़ रहे है तो रोक कर हम उसे लंगड़ा ही बना सकेंगे, स्वस्थ और सम्पूर्ण मानव नहीं।'

चंद दिनों में परिणाम भी सामने आ गया था। तार और हर अखबार घर की दहलीज छू रहा था। प्रकाश को अखिल भारतीय नाट्य प्रतियोगिता में पहला इनाम मिला था। पत्रकार और फिल्म निर्माता उसे घेरे रहते। पर प्रकाश अपने फिल्मी जीवन के प्रति बिना माता पिता की आज्ञा के कोई वचन नहीं देगा। अंग्रेजी अखबार ने पूरा साक्षात्कार छापा था। गदगद हो उठी थी श्रीलक्ष्मी। स्तब्ध रहगए थे मास्टर परांजपे। रात हिचकियों के साथकाटी थी श्री लक्ष्मी ने। दत्तात्रेय और उन्हीं का अवतार कहे जाने वाले शिरडी के सांई बाबा के चित्रों के समक्ष बारबार उठकर साष्टांग प्रणाम किए थे।

घर बधाई देने बालों से भरा रहता। विमूढ़ से निरखते और बोलते मास्टर परांजपे। श्रीलक्ष्मी हर बात संभाल लेती— 'बाप के गुण लिए हैं पूरे। इसीलिए कलाकार बन सका।' मास्टर परांजपे को हैरत होती— बी. ए. की डिग्री वो भी थर्ड में प्राप्त करने वाला युवक कलाकार कैसे?

फिल्म निर्माता सहदेव ने घेर ही लिया—'प्रकाश मेरी फिल्म से फिल्मी जीवन प्रारम्भ करे यही अर्ज लेकर आया हूं। मेरा डायरेक्टर उसके अभिनय को सार्थक अभिव्यक्ति दे सकेगा। पहली फिल्म में ही चमक उठेगा प्रकाश। सैलोलाइड के कैनवास पर आज महान जिम्मेदारी है और उसे अच्छा निर्देशक, अच्छा प्रोड्यूसर और अभिनेता ही सार्थकता प्रदान कर सकता है।'

'आपकी फिल्मों में साहित्य और साहित्यकार...।' पूरा प्रश्न भी नहीं कर पाए थे मास्टर परांजपे कि सहदेव बोल उठा था— 'महत्त्वपूर्ण है किन्तु पूंजी का अभाव, गलत निर्देशक और अभिनेता तथा अभिनेत्री का चुनाव, अच्छी कहानी का सत्यानाश कर सकते हैं।' फिर आत्मीयता के साथ धीमी आवाज मे कहा था—'पूरे दस लाख दूंगा सर। पांच कागज पर और पांच

बन्द लिफाफे में।'

'ऐसा क्यों...?' भूलभुलैया में पड़ गये थे मास्टर परांजपे। एक फिल्म में अभिनय के पूरे दस लाख। और पूरे जीवन भर साहित्य की सेवा करता साहित्यकार एक घर और निरंतर रोटी के लिए तरसता है...।

'पूरे कागज पर देने से सारा सरकारी टैक्स मे चला जायेगा सर और हमारी फिल्म का बजट भी बड़ा दिखाई देगा...टैक्स ज्यादा देना होगा।'

श्रीलक्ष्मी ने आंख से इशारा कर दिया था सहदेव को। आगे कहता-कहता चुप हो गया था। मास्टर परांजपे छड़ी उठाकर शाम की सैर को निकल पड़े थे। पूरे जीवन भर गीता और अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ पढ़कर जो मूल्य निर्धारित किए आज उनका रूप मिट्टी के ठीकरों मे बदल गया था। सड़क पर मिलने वाले हर आदमी से प्रश्न पूछना चाहा—तुम अभिनेता या अभिनेत्री क्यों नहीं बने ?

मुटठा नदी के पुल पर भिखारियों की एक लम्बी कतार बैठी हुई थी। प्रकाश को एक फिल्म के दस लाख मिलेंगे और ये भूखे अपाहिज अपने अन्तिम दिन तक रोटी के लिए तरसते रहेंगे। कैसा अजीब विधान है ईश्वर का।

सरकारी स्कूल की हैडमास्टरी से निवृत्त हो रहे थे। औपचारिक विदाई समारोह होता है ऐसे अवसरों पर। किन्तु अब इस बार विदाई समारोह है मास्टर परांजपे का। पूरा शहर उन्हें आदर देना चाहता है।

सड़क पर लगे पोस्टर पर पढ़ा था मास्टरजी ने—पुणे के महान युवा कलाकार प्रकाश के आदरणीय पिता श्री ए. व्ही. परांजपे की सेवा निवृत्ति पर पुणे शहर द्वारा विदाई समारोह का आयोजन। समारोह में प्रकाश जी भी पधारेंगे क्योंकि उन्होंने भी उसी स्कूल में पढ़ाई की थी।

मूक हो उठे थे मास्टर परांजपे। आज तक दाखिले के फार्म पर लिखवाते रहे थे—नाम...पिता का नाम...पर आज उलटा हो गया। कवि, स्वतंत्रता सेनानी, साहित्यकार और हैडमास्टर की हैसियत से न पहचान कर लोग उन्हें प्रकाश के पिता के रूप में पहचानेंगे। उनका अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व प्रकाश के अभिनय के कटहरे में आश्रय लेकर

मानपत्र पाएगा…छी। कैसी विडम्बना है? कितना छोटा और बोना है युग बोध …। छड़ी की दिशा मोड़ दी थी मास्टर परांजपे ने, और थके हुए अश्व की तरह घर को अस्तबल समझकर अन्दर घुसे थे। सुन्न रह गई थी श्रीलक्ष्मी। पोस्टर पढ़कर आये हैं समझ गई। हाथ से छड़ी ले, सम्हालते हुए कुर्सी पर बैठाते हुए कहा था—'तुम इतने उदास क्यों हो? यह तो हमारा सौभाग्य है।"

मैदान खचाखच भर गया था। श्रीलक्ष्मी के चेहरे से झुर्रियां गायब हो गई थीं। दूसरे तीनों बच्चे गर्व से भरे घूम रहे थे। हर कोई उनसे दो शब्द बोलना चाहता था। प्रकाश के आते ही लोग उठ खड़े हुए थे। इतनी भीड़ तो गांधीजी के लिए उभरती थी। प्रकाश क्या गांधी और नेहरू से ऊपर हैं?

मां के हाथों में एक बड़ा सा लिफाफा थमाकर प्रकाश जल्दी ही चला गया। रात में ही शूटिंग है खंडाला में।

थके हुए पति के हाथों में कार में बैठते ही श्रीलक्ष्मी ने लिफाफा थमा दिया था। बेटे की ओर से पिता को एक शानदार सजे सजाए बंगले का उपहार था। उन्हें अपनी अकिंचनता पर दुःख नहीं था। दुख था कला और कला के साथ पक्षपात का। लेखक, चित्रकार, वादक और संगीतकार एक अभिनय कला से लाखों मील पीछे रह गये, ऐसा क्यों? एक कविता का सृजन, एक गीत का गायन या एक मनोहर विस्मयकारी चित्र का निर्माण इतना सस्ता क्यों?

शक्ति कभी खत्म नहीं होती…। उसका रुप बदल जाता है…। फिर कला के क्षेत्र में यह उदासीनता और पक्षपात क्यों? माना कि मूल्य स्थायी नहीं होते पर अनुपात के भी नियम बने रहते हैं।

लोग कहते—आधुनिक युग में भी प्रकाश श्रवण कुमार है। लाखों का मकान लिया भी तो पिता के नाम से। रास्ते में चलते तो लोग निरन्तर अभिवादन करते। तभी कोई पूछ बैठता—कौन है?

अरे तू नहीं जानता! प्रकाश…अरे वही पुणे से गया फिल्मी हीरो! उसी के पिता हैं।

अभिवादन चांटे की शक्ल में छप जाता मास्टर परांजपे के गाल पर।

छी···। बेटे के अर्जन का अभिवादन पाते हैं। कोई नहीं कहता कि ये हैं स्वतन्त्रता सेनानी, संस्कृत और मराठी साहित्य के निर्माता और एजुकेशनिस्ट श्री ए. व्ही. परांजपे। अपना सारा सृजन उन्हें एक अनजाने कब्रिस्तान की भांति लगता—यह जीवन, यह श्रद्धा और नाम अर्जित नहीं हैं। लाटरी के टिकट का वैभव है।

लाखों रुपये का सामान है बंगले में। बाहर मखमली कालीन सी घास पर शीघ्र ही थक जाते हैं मास्टर परांजपे। कोच पर पसर आंख मूंद लेते हैं। कल्पना उन्हें मुला मुट्ठा के पुलों से उतार संभाजी पार्क से टहलाती हुई डेकन जीमखाने के जिमनास्टिक भवन में ले जाती है जहां वे वर्जिश करने लगते हैं।

लोग घर आकर उनके चरण छू आर्शीवाद मांगते। प्रकाश भी अपनी हर नई फिल्म को साईन करने से पूर्व पिता के चरण छूने आता। श्रीलक्ष्मी गद्‌गद्‌ हो कर कह उठती—'तुम्हीं तर आकाश आहात अणि सर्व तारे। तुम आाकश हो और सब तारे हैं!' पर आकाश स्वयं में गहरी शून्यता महसूस करता। नौकर और ड्राइवर को कार के पास ही छोड़ मास्टर परांजपे खंडाला की वादियों में उतर जाते। ऊपर से दूधिया कोहरा उन्हें ढक लेता। गहरा अकेलापन महसूस कर वे स्वयं से ही बड़बड़ाकर बात करते, तर्क करते और ईश्वर से प्रार्थना करते कि विदेशी सामानों से भरे इस जजीरे से निकाल कर उन्हें किसी आश्रम में पहुंचा दो जहां वे छोटा सा झोंपड़ा डाल कर अकृत्रिम जीवन जी सकें।

श्रीलक्ष्मी उनकी हर बात का ध्यान रखने की चेष्टा करती। उनकी कविताओं की सराहना करती। कभी कह उठती—'तुमने शब्दों से जिस स्वर्ग को साकार देखना चाहा था वह सभी कुछ तो इस घर में आ गया हैं।'

मास्टर परांजपे को श्रीलक्ष्मी भी पराई लगती और वे स्वर्ग से भागने की कल्पना में आंखें बन्द कर लेते। विदेशी समान से भरे घर में उन्हें बापू की सिसकियां सुनाई पड़तीं।

कमरे रंगीन पत्रिकाओं से भरे रहते। प्रकाश हर चित्र में अभिनेत्रियों को आलिंगन में बांधे दिखाई देता। अक्षरों में अफवाहें होती—प्रकाश

का नया रोमांस।

मास्टर परांजपे आंखों के आगे खबरें और चित्र पड़ जाने पर भी मूक रहते। श्रीलक्ष्मी कहती—'अभिनेत्री से विवाह नहीं करेगा प्रकाश। उसे तो घर के लिये घरेलू लड़की चाहिए।'

विस्मय से देखते मास्टर परांजपे। एक व्यंग्य अन्दर ही अन्दर अश्लील पोस्टर की तरह उभरता—हां क्यों नहीं। अभिनेत्रियों को तो घर से बाहर भोगता ही रहता है।

भाऊ कोता साहिब का पत्र और लोनावाला से भेजे एक सौ एक की रसीद तकिए के नीचे से मिल गई थी। भतीजे की शादी में सिर्फ एक सौ एक का मनी आर्डर और उन्हें खबर ही नहीं। श्रीलक्ष्मी हकलाते हुए सफाई देती है—'तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। जान जाते तो जाने की जिद करते इसलिये।'

तीखे हो जाते हैं मास्टर परांजपे—'हां अमीर आदमी कब गरीबों का रिश्तेदार होता है। मैं गांव जाता तो लोग हंसते।'

घर भागने लगा है। प्रकाश भागा-भागा आया है। दो दिन से शूटिंग पर भी नहीं जा रहा है। मास्टर परांजपे का रक्त चाप बहुत बढ़ा हुआ है। डाक्टर दारुवाला रोज बंबई से आकर देखता है। पूरे हजार रुपये रोज लेता है। प्रकाश को रुपयों की चिंता भी क्या है? श्रीलक्ष्मी भरी हुई आंखों से पास बैठी हुई है। मास्टर परांजपे की मुट्ठी बंद है।

डाक्टर दारुवाला नींद का इंजेक्शन देता है। मास्टर परांजपे की आंखें बन्द होने लगती हैं और मुट्ठी खुल जाती है। मुट्ठी में दबी एक सौ एक के मनीआर्डर की रसीद नीचे गिर जाती है।

श्रीलक्ष्मी उठा के देखती है। प्रकाश और दूसरे बच्चे प्रश्नवाचक दृष्टि से मां की ओर देखते हैं। श्रीलक्ष्मी अपने अन्दर पहली बार स्वयं को गिरा हुआ महसूस करती है। सिरहाने से उठकर पांयते बैठ जाती हैं और फिर एक आवेश के साथ फूट-फूट कर रो पड़ती है।

प्रश्न अन्य निगाहों में फुटबाल की तरह ठोकर खाकर उछलता रहता है। दिन, रात और वर्ष बीत रहे हैं। हिन्दुस्तान में जनता पार्टी शासन कर टूट गई। ईरान एय्याश पहलवी के हाथ से निकल कर धार्मिक

जोश में इमाम खुमैनी के बर्बर हाथ की मुट्ठी में दब कर प्रतिक्षण खून के आंसू रो रहा है। बाजार में हर चीज के दाम बढ़ रहे हैं किन्तु सियासत या मंहगाई का कोई असर इस घर पर नही पड़ता है। मास्टर परांजपे के राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक मूल्यांकन, अखबार की रद्दी की भांति आज के सत्य के नीचे दब गए हैं।

महलनुमा घर के अन्दर खामोशी की टिकिया निगले मास्टर परांजपे अस्तित्वहीन व्यक्तित्व की तरह जीते हैं। बाहर उनकी क्रांति, काव्य और लेखन को कोई जानता नहीं। उनकी पहचान की संज्ञा है—प्रकाश के पिता।

जीवन की पहचान उन तक श्रीलक्ष्मी के द्वारा प्रेषित होती है। श्रीलक्ष्मी के वाक्य—तुम आकाश हो और सब तो तारे हैं, याद आते हैं। —पूरी जिंदगी एक छलना लगने लगती है। घर में आनेवाली भीड़ उन्हें एक अजूबे की तरह देखती है। मानो दिमाग पर जोर डाल सोच रही हो—ये कैसे हो सकते हैं प्रकाश के जनक।

प्रशान्तक

सामने ही दिखाई देती हैं पर्वत श्रेणियां। सूरज निकलते ही धवल धूपिया फोहों का खरगोशी दल उछलता कूदता दिखाई देता है। बंगले के टैरेस से पहाड़ियों की अन्तहीन कतारें और सघन वनस्पति साफ दिखाई देती है। भूरी पहाड़ियों की कतारें रात्रि के अन्धेरे में लेक्ट्रिक इन्जन के तीव्र प्रकाश से ट्रांन्सलूसेन्ट क्रिस्टल की भांति चमकने लगती हैं। पहाड़ियों की ऊंट जैसी पीठ पर फुदकती धूप के खरगोशों के साथ अपर्णा का मन दूर तक कूदता हुआ चला जाता है। शाम को नीचे से ऊपर की तरफ लौटती धूप के साथ अपर्णा की दृष्टि चढ़ाई की ओर भागती है और फिर यकायक ढलान के साथ जुड़ी खाई पर आकर रुक जाती है। आधी रात गए तक अर्पणा जुगनुओं की जलबुझ के साथ अपने को आंख मिचौनी खिलाती रहती है।

अचानक ही एक बलात्कार के भय की सिहरन त्वचा से हड्डियों में उतर आती है और वह बेतहाशा भागने के निर्णय में नागफनी के समूह में उलझ जाती है ··बाहर चांद तारे चश्मदीद गवाह की तरह आसमान में असहाय टंगे रहते हैं।

पार्श्व के कमरे में नितिन के हाथों में जकड़ी कलम एक खंजर की तरह चलती हुई लगती है और जब सोचने के लिए नितिन आंखें मूंदता है तो घर और बाहर की हर शै ··आतंक से विकल हो थम जाती है। लगता है कि नेत्र खुलते ही हर सामने आने वाली वस्तु भस्म हो जाएगी। खिड़कियों पर लटके पर्दे बल्लमधारी गणों की भांति निश्चल पहरा देते हैं ···खामोश···जागते रहो···।

बाहर से आने वाली हवा और प्रकृति वैभव से ओत प्रोत हर दृश्य और वातावरण से नितिन को नफरत है इसीलिए आज तक उसकी स्टडी की खिड़की कभी खुली नहीं।·· सुबह·· शाम मौसम के रंगीन परिवर्तन दस्तक दे देकर थक जाते हैं पर खिड़की नहीं खुलती है। पहाड़ियों से घिरे द्वीप जैसे स्थान पर सिर्फ अगर कुछ नितिन को भाता है तो लाश की मानिन्द ठण्डा मौन और एकाकीपन। जिंदगी के हर अक्षर और स्वर को नितिन ने तावेदार बनाके खामोशी की तावीज उनकी गर्दन से लटका दी है। जादुई शब्दों में कह दिया है-स्टेचियू। बोलना नही···चलना नहीं।

और इस माहोल में अपर्णा को रोज जीना पड़ता है पूरा दिन···। काटनी पड़ती हैं मेंहदी लगे हाथों पर सूनी···यातना भरी रातें। हर क्षण उसके अस्तित्व को अमर्यादित करके उसके हाड़-मांस में भर देता है एक गहरी टीस ।···वह चिल्लाना चाहती है···पर हर दीवार पर ब्रह्म राक्षस द्वारा लिखी इबारत कहती है—खामोश !·· उसे उफ तक नही करने देती। उफ का अर्थ है···शोर··· डिस्टर्बेन्स। साधक की साधना में बाधा।

वह नितिन के इस दुर्ग में स्वयं को एक कैदी की तरह महसूस करती है। उसका अस्तित्व और व्यक्तित्व नमक के तेजाब में जस्ते की डली की तरह पिघलता है। नितिन का महत्वाकांक्षी आक्टोपस की तरह दिन में उसे आतंकित करता है और रात अपने शिकंजे में जकड़ उसके हर अवयव का खून पीता है···। प्रतिक्षण जीनी होती है उसे एक खुदकशी सिर्फ इसीलिए कि नितिन अपना महान ग्रन्थ पूरा कर सके उसकी ईगो आकश के चांद को अपने अंधेरे से ढक पाने में सफल हो सके।

अपर्णा ने शादी का सुख दूसरा ही सोचा था। ज्ञात नहीं था कि एक गूंगी नर्स की तरह नितिन के आपरेशन थियेटर में कठपुतली की तरह जीना होगा · और जब कोई थक जायेगा तो स्फूर्ति देने के लिए एक झटके के साथ निर्वस्त्र होना पड़ेगा क्योंकि समर्पण की सतह तक पहुंचने में एक समय लगता है और नितिन को समयाभाव है। पत्नी को सजाने और निरखने का वक्त ही कहां है उसके पास ?

शादी के नाम पर पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों का गौरव रूपी कूड़ा अपर्णा पर उछाल नितिन पूर्ण हो गया···अपने अभाव की पूर्ति उसे मिल गई है। उसकी दृष्टि में नारी को और क्या चाहिए ! रुपया·· पैसा··· जेवर···घर और नितिन की पत्नि होने का गौरव, सब ही कुछ तो अपर्णा के पास है। और क्या चाहिए उसे ! यदि पति की पाश में अपर्णा जकड़न महसूस करती है तो अर्थशास्त्र विशेषज्ञ नितिन क्या करे ?

आलिंगन और जकड़ · प्यार और प्यास या मिठास की विभक्ति के लिए नितिन के पास समय कहां है ? गौरव की आकांक्षा में डूबा पुरुष सिर्फ नारी का आखेट कर सकता है·· नारी के अपनत्व और उसके समर्पण से पूर्ण बंचित रहता है । ·· इस बोध की तरसन तो सिर्फ अपर्णा के हिस्से में ही है जो नितिन के राक्षसी दुर्ग में जबरन कैद हुई महसूस करती है।

नितिन को लेकर किन्नी, विराम और माता पिता सब ही से कट गई है पर नितिन की देह से जुड़कर भी नितिन से कितनी दूर हो गई है ! यह सिर्फ अपर्णा जानती है। पत्र-पत्रिकाओं में फोटू देखकर कितने खुश हो रहे होंगे सब । पर शायद किन्नी समझ पा रही हो उसकी अंतर्वेदना! ···छोटी होते हुए भी किन्नी उससे आगे है—बोल्ड है। इसीलिए तो साफ कह गई थी ··आदर्श ··ऊंचाई···महानता·· ये सब ऊंचे ठूंठ वृक्ष पर लटके काल्पनिक फल हैं। उस ठूंठ के लिए समर्पित होकर जीवन जीने के लिए बचता कहां है दीदी? ···खुदकुशी को शहीद होने की संज्ञा देने जैसा ढोंग है यह सब कुछ।

फरवरी की गुलाबी धूप सेकते परिवार को सरला बुआ ने जीना चढ़ते-चढ़ते हिला दिया था—"अरे राजेश। तू धूप सेक रहा है और अपर्णा को देखने वो कल आयेगा।···तुझे तो लड़की की फिक्र ही नहीं है।"

अम्मा हंसी थी—"वो कौन दीदी ? कुछ नाम पता भी है उसका या कल उसकी छटी तुम्हारे घर और नामकरण हमारे यहां होगा।"

"तू बस मजाक करती रह ननद से। कल जब आएगा तो सब चरखनी से घूमते फिरेंगे"। भोजाई को प्यार में लताड़ते हुए सरला

बुआ ने कहा था ।

किन्नी ने सिर के चारों ओर उंगली घुमा बुआ को पागल घोषित करते हुए कुछ कहना चाहा था पर अपर्णा ने आंख दिखा दी तो वो खामोश हो गई थी । गुत्थी उसकी बुद्धि से भी परे थी···।·· क्या पहले ही घर में किसी के लिए बात तै कर गई थीं? फिर भी लगा कि कोई भारी भरकम वी० आई० पी० जरूर है अन्यथा चन्द्रेश जैसे ऐलाइड सर्विसेस से सैकशन आफीसर बने लड़के को बुआजी ने कलम छाप बाबू कह कर सहज ही बरों की लिस्ट से न निकाल दिया था ।

चन्द्रेश ने कहा था—"बड़े खानदान की हो । फिर कैसे लोग मुझे चुनते जो टयूशन पढ़ पढ़ा के नौकरी की कुरसी पकड़ उसी से चिपका रह गया है । आगे पीछे है क्या मेरे···? न कोई जज···न कोई मिनिस्टर रिश्तेदार है । कल आने वाला अफसर जरुर इन्कम टैक्स अधिकारी से वजनी हस्ती है···अन्यथा बुआ !"

"पर चन्द्रेश—हमारा प्यार···।"

चन्द्रेश ने जबाव नहीं दिया था, प्रश्न किया था—"चलोगी मेरे साथ रजिस्ट्रार आफिस में । परसों ही कागजात भर देंगे·· । तुम वयस्क हो । प्यार अगर अहमियत रखता है तो सोमवार को न्यू कोर्ट पर मिलना ।" कहकर चन्द्रेश चला गया था । अपर्णा के पावों के नीचे सरेश चिपक गया था । प्यार करना कितना अच्छा लगा था···। कितनी चाहत थी प्यार पाने और प्यार करने की, किन्तु अदालत तक का पांच किलोमीटर का रास्ता जहां चन्द मिन्टों में पंहुचना सहज है कितना असहज···पुरखार महसूस हुआ था । शायद प्यार को एक अनुभव की तरह जीवन में पाने की लालसा सब ही करते हैं किन्तु विवाह के दोराहे पर प्यार का उन्माद सिर्फ मन को मथ भर पाता है । उसका निर्णय हर जिम्मेदारी से कतरा के उन सब पर छोड़ दिया जाता है जो प्यार को छिछोरेपन और पागलपन की संज्ञा देकर लाभ और हानि, खानदानी ऊंचाई और सामाजिक प्रतिष्ठा की बही में कुछ पढ़कर खूंटे से जिन्दगीं को बांधना पसन्द करते हैं । शायद यह आदमी की अपनी अनावरणित चालाकी है···या प्यार पर अविश्वास अथवा लाचारी जो विवशता बन पांव में जंजीर की तरह

चन्द झूठे सच्चे आंसुओं के साथ स्वेच्छा से बंधवाली जाती है और भविष्य में एकांत पाते ही या कटुताओं के मध्य उसे खोल न पाने की विवशता में एक सुनहरी दिवंगत याद की तरह जिसे उभार लिया जाता है।···आंसू बहाने के लिए।

अपर्णा को लगा था कि अपने को अलग रख एक दार्शनिक की तरह वो व्यर्थ ही विश्लेपण कर रही है जबकि मसला उसकी अपनी जिन्दगी का है ··। उसके प्यार का है···। अन्दर चलती मंत्रणा में उसकी जिन्दगी का फैसला हो जायेगा·· इक तरफा फैसला। सिर्फ चन्द क्षण शेष हैं जिनमें उसे औरो से पहले फैसला करना होगा। फिर उसे महसूस हुआ कि वो चन्द्रेश को पसन्द करती है···। जानती है···लेकिन शायद बन्धन की मंजिल तक वे नहीं पंहुचे थे। इस संपृक्तता तक पंहुचने से पहले ही··· निर्णय के लिए उन्हें विवश होना पड़ा है। प्यार···अगर बद्धता तक पहुंच जाता तो निर्णय की स्वेच्छा कहां होती? शायद स्थिति स्वयंवर की है··· चन्द्रेश और वो! पर वो···कौन···?

"—देख ज्यादा फैशन की जरुरत नहीं है···। नितिन खुद बहुत सादा रहता है।···एकदम इन्टलैक्चुअल है···। जो पूछे बस जबाब दे देना," बुआ ने मुस्कराते हुए अपर्णा को समझाया था।

"—अंग्रेजी की स्पेलिंग्स तो नहीं पूछेंगे बुआजी?"—किन्नी ने छेड़ दिया था पर बुआ जी ने झूठे गुस्से के तेवर दिखा बात का रुख बदल दिया था —"अरे भइया बड़ा व्यस्त है। कोई भारी ग्रन्थ लिख रहा है। कई लड़के लड़कियां पढ़ने आते हैं··गाइड़ है। बम्बई में उसे दूसरा महालनोबिस कहते हैं···। सरकार अपनी स्कीमों पर उसकी राय लेती है। चाहे तो कल सैक्रेट्री हो जाए···पर नहीं! प्रोफेसर रहेगा··किताबें लिखेगा·· कन्सलटेन्सी सर्विसेस रखेगा। जाने क्या क्या करता है। तुम्हारे फूफा ही समझ पाते हैं। माता पिता बहू की रट लगाते चले गए पर विवाह की फुर्सत ही नहीं मिली। अब जब पूरी दुनिया पीछे पड़ रही है तब कहता है— कर लूंगा पर चटपट। दिखावा बिल्कुल नहीं···शादी है कोई फिल्म की शूटिंग नहीं···ऐसा ही कहता हैं।"

अपर्णा ने गुदगुदी सी महसूस की थी। आफिस में कलम चलाता

सैक्शन आफिसर चन्द्रेश हलका पड़ने लगा था···। कांटों पर चलना भी तो मुश्किल है ··।

एकांत पाते ही किन्नी ने चुटकी ली थी—"गुडलक दीदी···। पंढारा रोड छाप लड़की सीधे ही इन्टरनेशनल फिगर होने जा रही है। बैठक में रोज रिपोर्टर्स बैठे इंतजार करेंगे ··। नितिन साहब की बगल में हर जगह तुम्हारी फोटू होगी···। वो ··इकनामिक्स लिखेंगे···तुम कविता करना ···हर तरफ किताबें होंगीं·· तुम होगी नितिन साहब होंगे · और ।" किन्नी ने मजाक को मोड़ पर छोड़ दिया था। उन्मादित होती अपर्णा ने चौंककर पूछा था और···"और क्या किन्नी ?"

किन्नी ने भौंहें सिकोड़ होठों को वक्राकार ज्यामिती देते हुए कहा था —"और क्या···?···पिटी···। सब होगा···पर हर आदमी वहां सिर्फ सुनेगा···बोलेगा नहीं। फूल और हरियाली नहीं होगी···रोमांस नहीं होगा। फुर्सत ही कहां होगी किसी को? यह फेम ··आदमी का नशा होती है···। आदमी उसमें स्वार्थी हो जाता है···प्लेट चाटता है और सकोरे की महक भूल जाता है। आनन्द···अपनत्व···हर्ष क्या होता है दूसरे का अस्तित्व क्या होता है···याद नहीं रहता है।···आई वार्न यू दीदी···।"

"स्टुपिड !"—अपर्णा झुंझलाई थी।

पर किन्नी गम्भीर थी—"दीदी पादरी से प्यार की आकांक्षा एक झूठ है···आदमी पादरी बन खुद को ईसू से भी महान समझने लगता है। जिसे सरमन्स देने की आदत हो वो प्यार की भाषा नहीं बोल सकता है।"

"मैं होती तो बिना देखे ही इन्कार कर देती। मुझे पुरुष चाहिए··· अपना पुरुष···अपने लिए। जिसे फूलों की गंध की पहचान हो और जो जूड़े में महकते बेले की खुशबू से मतवाला हो जाए।"

"कितना बोलने लगी है तू! मूवीज ने तुझे एकदम बिगाड़ दिया है···।" अपर्णा ने खीजते हुए कहा था। अन्दर ही अन्दर लगा—चन्द्रेश को ले वो स्वयं भी तो इसी तरह सोचती रही है।

बिस्तर में लेट एक बार फिर उलझ गई थी संश्लेषण में···। भूल गई थी कि चन्द्रेश न्यू कोर्ट पर इन्तजार करेगा। महामहिम व्यक्तित्व ने चन्द्रेश को पूरी तरह ढक लिया था। उसे लगा था कि किन्नी महज बकवास कर

रही थी। इन्टलैक्चुअल होकर आदमी क्या अनुभूतिहीन हो जाता है। प्यास और प्यार के क्षण तो स्वयं जुट ही जाते हैं। नहीं होता है तो उच्छल्ला-पन ओछापन। यह जरूरी नहीं कि हर गम्भीर आदमी बोर होता है। माईकल एंजिलो भी तो व्यस्ततम कलाकार था। किन्तु फ्लोरेंस की धरती पर उसे प्यार करने और पाने की लालता और भोगने के लिए वक्त की कभी कमी पड़ी? व्यस्तता आदमी को गम्भीर जरूर बना देती होगी पर उसके अहसासों की कोंपलों की सजीवता को जड़ नहीं बना सकती है। विचार और कृत्य के समन्वय से आदमी संपृक्त हो·· असाधारण हो जाता है। शायद सबके सामने सामान्य नहीं रह पाता हो ऐसा आदमी। किन्तु एकांत में तो सपनों के रंग फूट ही पड़ते होंगे। औरत के त्रिपार्श्व से जब पुरुष की किरण स्पर्शित होती है तो वासना और चाह बिना इन्द्रधनुष बने कैसे रह सकती है? क्या पता चन्द्रेश · जो आज उन्मुक्त लगता है कल किसी मुकाम पर पहुंच संकुचित लगे। रिस्क तो हर जगह व्याप्त है। पहचाने और अंजाने··· दोनों के साथ भविष्य तो अज्ञात ही रहेगा।

बुआजी की बात सच ही निकली थी। सूरज निकलने के साथ ही घर का हर कदम दौड़ने लगा और मेज कुर्सियां घूमने लगीं। गुलदस्तों की जगहें बदल गईं। अपर्णा ने स्वयं को सहमा हुआ सा महसूस किया।

कार से बुआजी के साथ नपे तुले कदम रख नितिन घर में पहुंचा था। कनुप्रिया की पंक्तियां गुनगुनाती···गालों पर हलका पाउडर टच दे रही थी तभी किन्नी व्यंग उछालती आ गई—"वो आ गया है तुम्हारा···।"

"तू ने पास किया कि फेल ?" मुस्कराते हुए अपर्णा ने पूछा।

किन्नी खिड़की से बाहर झांकने लगती है । अपर्णा ने अपना प्रश्न दोहराया था। किन्नी शायद जबाब नहीं देना चाहती थी···। चन्द क्षण गूंगे रहकर बीत जाते हैं। तभी किन्नी कहती है—"लोदी गार्डन में चन्द्रेश इन्तजार कर रहा है दीदी! ··मैंने उसे बता दिया है···।"

अपर्णा का चेहरा लटक जाता है। किन्नी हवा में शब्द उछालती है—"चन्द्रेश से नितिन को या नितिन से चन्द्रेश को कम्पेयर मत करो दीदी। हर बादशाह शाहजहां की तरह मुमताज को प्यार करेगा इसकी गारण्टी कौन दे सकता है। पर चन्द्रेश तुम्हें चाहता है और तुम आकाश के सितारों

के मध्य जाना चाहती हो ··जबकि जमीन का कोई पौधा तुम्हें अपना सब कुछ देने को तैयार है।'' अपर्णा अन्दर से हिलने लगती थी किन्तु बुआजी की भारी पदचापों में उसके अन्दर जागती प्यार की सूक्ष्म गंध धुआं बनके काफ़ूर हो जाती है। ऊपर से नीचे तक नपी तुली दृष्टि डाल संतोष की सांस छोड़ बुआजी उसका हाथ पकड़ चल पड़ती है। किन्नी ने गुस्से से फर्श पर पैर पटका था। शायद चन्द्रेश के दर्द को अपर्णा से ज्यादा किन्नी ने अहसासा था ··। चन्द्रेश के दर्द को उसने नहीं···अपनी दीदी को होने वाली कैद की शून्यभरी रातों का अहसास भी किन्नी ने ही महसूसा था। एक अधूरी कविता की तरह अपर्णा ने चन्द्रेश को वहीं छोड़···नए गीत की रचना की कल्पना से स्वयं को आच्छादित कर लिया था।

नितिन के भारी भरकम व्यक्तित्व के आगे संकुचित हो उठी अपर्णा। अपने से काफी बड़ा लगा उम्र में नितिन। खाने में सिर्फ एक तन्दूरी रोटी और सलाद खाई। मां ने एकान्त में उम्र की बात छेड़ी थी पर बुआ ने शब्दों का ऐसा छौंक लगाया कि सब की अक्ल गुम हो गई—"तू क्या आठ वर्ष छोटी नहीं है···। तेरे फूफा पूरे ग्यारह साल बड़े हैं । आदमी का रुतबा···और व्यक्तित्व उसे जवान रखता है।···औरत की कमसिनी उसे जवान बनाए रहती है। नहीं तो आठ दस साल बाद अपनी बीबी ही बूढ़ी लगती है।"

दोपहर की नींद में किन्नी का हाथ अपनी कमर से हटा उसने फिर सोचना शुरू कर दिया था···अगर चन्द्रेश···सामने पड़ गया तो···? तो क्या? कह देगी कि उसमें संघर्ष की शक्ति नहीं है। पर चन्द्रेश से न कह उसने किन्नी से कह दिया था—"तू समझती नहीं है किन्नी। चन्द्रेश कायस्थ है···। क्या पापा मम्मी मान जायेंगे? उनको दुख नहीं पहुंचा सकूंगी।'

"झूठ! पहले नहीं जानती थीं यह बात! या फिर प्यार को एक संस्मरण की तरह जिन्दगी के कोष्ठक में भर समीकरण पूरी करना चाहती थीं···। दीदी तुम इतनी कठोर होंगी मैंने सोचा भी नहीं था। पांव में मेहन्दी लगने से पहले ही तुम्हारी चाल तिरछी हो गई दीदी···। पर चन्द्रेश तुमसे प्यार करता है···वो कायर नहीं है। तुम नितिन को सत्य मान पत्थर पूजने जा

रही हो।"

अपर्णा की आंखों से चन्द आंसू ढुलक पड़े थे। नितिन के व्यक्तित्व में स्वयं के विलुप्त हो जाने की क्षीण सम्भावना व्याकुल करने लगी थी किन्तु सब कुछ निश्चित हो जाने के बाद इन्कार की ताकत उसमें नहीं थी।

चार आदमियों की बिना बैंड बाजे वाली बारात देख बुआ ने बात बनाई थी—"एकदम आदर्शवादी है। दिखावा बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

किन्नी ने मुंह चिढ़ाया था—"आदर्शवादी। ही इज ए मूविंग स्टोन। क्या आदर्श है बुआ? किसके लिए कुर्बानी कर रहे हैं? किससे विरोध है? सन्नाटे को समाधि नहीं कहा जा सकता है। तुमने दीदी की जिन्दगी खराब कर दी···।"

"किन्नी···।" पापा ने डांटा था। पर अन्दर से उनके अहसासों पर भी चोट लगी थी। सजे सजाये मंडप में चार बाराती कुछ बदरंग से लग रहे थे।

उसी रात फ्लाई किया था अपर्णा को लेकर। पूरे रास्ते अपनत्व के एक स्पर्श की चाह में अपर्णा सूखती रही। उसे संभालने, दुलारने या रास्ता बताने की जरूरत ही नहीं महसूस की नितिन ने···। अपर्णा साए की तरह चलती रही···रुकती रही। बम्बई से पैंतीस मील दूर ईगतपूरी के सूने बंगले में सोहाग जोड़ा पहन स्वयं को किसी पिरामिड में कैद पाया। सहमे-सहमे चन्द चेहरे फुसफुसाती आवाज में बोलकर खामोश हो गए···। नितिन ने बताया···" पी.एच.डी. कर रहे हैं···। गाईडेन्स लेने आते हैं।"

एक नौकर की नपी तुली पदचापों के अलावा पूरा घर एक अजीब से सोग में डूबा रहा। "साहब चाय स्टडी में लेंगे"—कहता हुआ खिलावन चला गया। अधरों को छूती चाय कड़वी जहर सी लगी। कैसा पुरुष है। पुरुष है या मशीन? जिसमें भावना उपजती ही नहीं। सामने पहाड़ काईया होते जा रहे थे। धूप दौड़ती ऊपर चढ़ रही थी। ऊपर चढ़के कहां जाएगी? फिर रात आ जाएगी। और रात···। शायद उसमें नितिन का दार्शनिक आदमी बनके सहज नजर आये।

अपर्णा को लगा कि एक औरत को लाकर नितिन ने अपने हरम को बसा लिया है किन्तु उस औरत की उसे पर्वाह नही है···शायद जरूरत

भी न हो। यहां शायद सिर्फ गौरव की फसल बोई जाती है और घर की हर ईंट तेजाब से बनी है जिसके स्पर्श से उस की देह आत्मा की मर्यादा दलित हो जाती है। काफी का घूंट कंठ से उतारते हुए नितिन ने सुनाया—"साढ़े नौ बजे प्रेस वाले आ रहे हैं इंडियाना में। जरा तैयार हो जाना, वहीं डिनर है।"

नश्तर की गहरी चुभन महसूस करती है अपर्णा। विवाह करके लाए तुम और सजा रहे हो प्रेस के लिए। मैं कोई द्रोपदी तो नहीं। न ही नगर-बधू हूं नितिन। अपने लिए नहीं तो गैरों को क्यों दिखाना चाहते हो? तुम्हारे दर्पण में क्या दिल नाम की कोई वस्तु नहीं है नितिन कि दूसरों को दिखा रहे हो बस।

पूरी तरह सजती है अपर्णा! औरों का नहीं···अपने विश्वमित्र का राक्षसी तप भंग करना है उसे···।

कैमरे की फ्लैश से ज्यादा अपर्णा की कांति है···। प्रेस वाले मुग्ध भाव से निरख रहे हैं। नितिन के शिष्य और शिष्याओं में भी हलचल है।

अपर्णा कुछ क्षण सुलक्षणा वाडेकर की बातों में खो जाती है। नितिन की पैट शिष्या है। अन्दर के अर्थ की ईश्वर जाने पर बाहर की भूगोल काफी मोहक है। बम्बई के नुकते समझाती रही वाडेकर—"बम्बई में आदमी योग दर्शन करता है। पहचान जाता है कि वह नितांत अकेला है·· उसे अपने लिए जीना है···नितांत अपने लिए जीना है और हर चीज़ की कीमत देनी है···। अहसास और आदर्श यहां होटल के कूड़ेदान में खाना खोजते हैं अपर्णा जी। कौन क्या करता है किसी को मतलब नहीं। हर आदमी जब तक उपयोगी है पूजा जाता है और उसके बाद डस्टबिन में फेंक दिया जाता है।"

अचानक एक रिपोर्टर की आवाज उसे वापस लौटा लाती है, प्रेस कान्फ्रेन्स में—"आप अर्थशास्त्र के पण्डित ही नहीं जौहरी भी हैं रूप के नितिन जी···।···क्या हीरा छांटा है अपने लिए।"

नितिन एक गंभीर मुस्कराहट के साथ अपनी टाई की नॉट ठीक करता है···दर्जन भर अखबार वाले बेतुके प्रश्न करते हैं—"शादी से पहले

रोमांस था क्या आपका ?"

नितिन सवाल को उछालकर गटर में फेंक देता है—"रोमांस के लिये फिल्में काफी हैं···जिन्दगी जद्दाजहद का नाम है जनाब।"

अपर्णा को लगता है —चन्द्रेश गटर से निकलने की चेष्टा में तड़फड़ा रहा है।

कार में निढाल सी लेट जाती है अपर्णा—कल अखबार उसके और नितिन के फोटू और इंटरव्यू निकालेंगे। पंढारा रोड छाप अपर्णा दिल्ली में फैमस हो जाएगी। बुआजी ··माता-पिता···गौरव से भर लोगों को बताएंगे···यह हमारी अपर्णा है। लोग कहेगे—हाऊ लकी···। किन्नी शायद मुंह बिदकाये।

कौन जानेगा अपर्णा का आहतपन? नौकर भीमा दामोलकर तिरछी चितवन से हंसता हुआ बैंडरूम फूलों से सजा गया था। अपर्णा थक के फूलों पर बिखर जाती है। घड़ी के घण्टे टनटना के मिलनयामिनी पर व्यंग्य करते हैं···। खामोशी सशस्त्र मुगल हरम में हिजड़े की तरह पहरा देती है।

अपर्णा की आंखें थक के सोने लगती हैं···सपने आतंकित से दूर खिड़की पर खड़े रहते हैं। अनायास बाहों के दबाव से दम घुटने लगताहै··· आलिंगन इतना कठोर होगा सोचा नहीं था। कुछ बोलना चाहती है पर बजनी शब्दों में उसके शब्द रास्ता नहीं तलाश कर पाते— "बहुत व्यस्त हूं अपर्णा बड़ा गम्भीर काम हाथ में है···थक जाता हूं·· चाहता हूं कि कोई प्यार करे। बहुत सारी लड़कियां हैं पर उनसे अपनी औरत जैसा प्यार तो नहीं पाया जा सकता। जरूरत पर वे होंगी भी कैसे? तुम्हारा गर्म जिस्म मेरी थकान मिटाकर मुझे अपने काम के लिए स्फूर्ति दे सकता है अपर्णा ·। मेरा और तुम्हारा नाम क्षितिज पर अमिट अक्षरों में लिखा जायेगा···। अभी बच्चों का डिस्टर्बेन्स नहीं चाहता हूं इसीलिए···।"

अपर्णा जड़ हो जाती है। सिसकना भी नारीत्व का अपमान लगता है। खर्राटे भरते पुरुष के पार्श्व में स्वयं को पूर्ण एकाकी महसूस करती है। क्या इसी रात के लिए वह अनगिनत रातों में सपने संवारती रहती थी।

अचानक आंख खुल जाती है। खुली खिड़की से पहाड़ियों द्वारा ठुकराए बादलों का कारवां अन्दर घुस आया था। अपर्णा हड़बड़ा के खिड़की

बन्द करने के लिए उठती है तो तलबे के नीचे थुलथुला काउंटरसेप्टिव आ जाता है।

"छी!"....घृणा से भर जाती है अपर्णा।...रात में घटित बलात्कार के इस प्रतीक को भी उसे ही हटाना ओर फेंकना होगा?

बक्राकार चांद का धूमिल अहसास उसे किन्नी के विद्रुप भरे अधरों की याद दिलाता है। उसे लगता है कि किन्नी बेशर्म और बेलाग आवाज में कह रही है—दीदी गौरव की बाहों में औरत सिर्फ एक ट्रेंक्वलाइजर (प्रशांतक) है...जिसका उपयोग थकान मिटाने या नींद लाने के लिए होता है।

निस्तब्ध रात में अपर्णा स्तब्ध सी सोहाग सेज पर बैठी रहती है। नितिन बेखबर नींद में डूबा रहता है।

●●

मरीचिका

पूरे आंगन में ऊंची-ऊंची घास उग आई है। धूप गिरती है तो ओस बिन्दु चमचमा उठते हैं, अम्मा की नाक की कील भी ऐसे ही चमकती थी। अम्मा ने तुलसी और फूलों के पौधे जहां-तहां लगा रखे थे वो स्थान भी ऊची उठी घास ने ढक लिये हैं, मानो अम्मा द्वारा रोपित हर अवशेष को घास छुपा लेना चाहती है। फौजी भाषा में खुद को या अपनी वस्तुओं को छुपाने की तकनीक के लिए बड़ा सटीक शब्द है—कैमापलाजिंग, इसीलिए सिपाही की यूनीफार्म से लेकर टैंक तक का रंग हरा होता है। अम्मा भी नहीं चाहती थी कि उनके बाद आंगन की कोई वस्तु बाबूजी की आंखों के सम्मुख आए, इसीलिए प्रकृति की कैमापफ्लाजिंग पूरे आंगन में फैल गई है। बाबूजी भी शायद ही कभी इधर निकलते हों। बाहर के द्वार से ही आते-जाते देखती है रामेश्वरी। किन्तु यादों के छुपे करील चुभ ही जाते हैं, पोर सहलाती है तो आंसू चू उठते हैं। रामेश्वरी के पांव दहलीज से चिपक जाते।

कन्नू और चन्नु को घास रौंदते हुए दौड़ने में बडा मजा आता है। पार्श्व की कोठरी में यादों के सफर में संलग्न रामेश्वरी की आंख बचा दोनों घास पर दौड़ते हुए टिड्डे पकडते हैं। अनायास ही रामेश्वरी को लगता कि कहीं वो तुलसी के बिरवो को न कुचल दें? क्षण भर के लिए विचलित हो होश में आती, याद आता कि अब न तो अम्मा है और न ही पौधे।

कभी इसी लिपे-पुते आंगन में अम्मा की पलक छांव में वो और जगदीश चहकते रहते थे। बाबूजी कोठरी के द्वार पर खड़े मुग्ध से देखते।

अब आधी रात में बाबूजी का दमा उभरता है तो रामेश्वरी तड़फड़ा उठती है, सूनापन गहरा और भयानक हो उठता है। आंखें अकारण ही भीग उठती है। अम्मा थीं तो गर्म तेल में लहसुन कड़का के कितनी देर तक मालिश करती थीं। सीने पर फिसलते हाथों के साथ बाबूजी की बीड़ी और सिगरेट को कोसती थी। वो झींकती तो बाबूजी एक नई सिग्रेट चिढ़ाने के लिए सुलगाने की चेष्टा करते और अम्मा झपट के उसकी चिन्दी-चिन्दी कर देतीं। खिलखिलाहटें मुखर हो उठतीं, खांसी फिर उभरती पर चुभती नहीं थी। आज खांसी की निरन्तरता और उसके बाद का मनहूस सन्नाटा कितना दीर्घ और असह्य है। कन्नू और चुन्नू की श्वांस का अहसास छत की कड़ियों तक उभरता और फिर कफ उगलते क्षणों में डूब जाता है। रामेश्वरी उठके ट्रांजिस्टर ऑन करना चाहती, फिर याद आता कि आधी रात कौन-सा भारतीय स्टेशन मिलेगा ? मिलेगा भी तो पश्चिमी संगीत की स्वरलहरियों में कौन-से सान्त्वना के अलाप मिलेंगे ? पश्चिमी संगीत की बात उसे काफी पीछे खींच ले जाती।

जगदीश जब पहली और अन्तिमबार अपनी अंग्रेज बीबी को लेकर आया था तो दिन हो या रात पाप म्यूजिक के कैसट्स निरन्तर बजते ही रहते। अम्मा ने अपने मन का दुःख मौन की तिजोरी में बन्द कर दिया था। बाबूजी पूरा-पूरा दिन मन्दिर में गुजार आते, स्कर्ट पहने या छाती तक खुली ब्लाउज डाले बहू की त्वचा की चिनगारियां उन्हें उद्विग्न कर उठती थीं। अम्मा बाबूजी की त्यौरियों के बदले रुखों के सामने मुस्कराती तो वे मिटपिटा जाते। पॉप म्यूजिक पर एलिजा थिरकती, उसका अंग-अंग कंपन करता, जगदीश झूमते हुए उसकी नंगी कमर में हाथ डाल विभोर हो भूल जाता कि वो आगरा के पुराने और दकियानूसी घर में आया हुआ है जहां आज भी तुलसी पर जल चढ़ाए बिना ग्रह स्वामिनी मुंह में कौर नहीं डालती है। रात को जब पश्चिमी संगीत की स्वर लहरियां उठतीं तो अम्मा के सलौने मुख-मण्डल पर भी एक गहरी वेदना उभर आती जिसे वो शीघ्र ही छुपा लेतीं, मानो सीपी तो मोती उगलने के बाद निर्मूल हो ही जाती है। एक रात रामेश्वरी से पूछा था—"क्यों री, ये क्या अंग्रेजी के भजन हैं ?" रामेश्वरी की हंसी छूट गई थी।

अम्मा से कह नहीं सकी थी कि जिन मुल्कों के लोग हंसते-गाते और नाचते हैं, वहां की जिन्दगी और संगीत दोनों में वेग है, निर्भीकता है और है चोट करने वाली शक्ति। संगीत से वो ईश्वर को नहीं, खुद को सुख से भरते हैं, उन्हें ईश्वर की जरूरत ही नहीं है। और जरूरत पड़ती भी है तो उसके लिए एक इतवार का दिन काफी है। ईश्वर और भजन की तो उन्हें आवश्यकता है जो भूखे हैं। अभावग्रस्त हैं। अम्मा उसकी चुप्पी से भड़क उठी थी, घुड़क के बोली थीं —"बोलती क्यों नहीं है ? क्या एम.ए में घास खोद रही है ?" रामेश्वरी ने हंसते हुए बताया था कि मौज-मस्ती के गीत हैं। अम्मा के चेहरे पर जीरो वाट के हल्के सफेद प्रकाश में भी एक गुलाबी शर्म की परत फैल गई थी, फिर कुछ मनोविनोद के भाव से बोली थीं— "जा मरी ! दिन में चिपटा-चिपटी और रात में भी वही, खाल में दर्द नहीं होता क्या ?" किन्तु रामेश्वरी गम्भीर हो गई थी, सोने का बहाना कर जागने का इरादा कर रही थी। उसे लगा कि पूजा, उपवास और मनौतियों के मध्य पाए अपने एकमात्र पुत्र का अलगाव और पश्चात् अम्मा को अन्दर ही अन्दर कुतर रहा है। जहां-जहां गंगाजल से सींचा था वहां-वहां करील उग आया है। जिसे अंक में भरकर सुलाने की चेष्टा में रात-रात जागी थीं, वो दो क्षण वात्सलय-के लिए भी ललका नहीं, मानो दूसरी औरत का अंक पाके दूध भरा अतीत घूरे की भांति निरर्थक हो गया है। बाबूजी रात के तैरते क्षणों में सिगरेट से धुएं के छल्ले बना आकाश की ओर फैंकते रहते, एक मूक सम्प्रेषण वातावरण में अजगर की भांति सांस खींचता रहता। चांदनी की मटरमाला के दाने अनदेखे रह जाते। ताजमहल शब्दहीन अंधेरे की नंगी गोद में निश्चल पड़ा रहता।

रामेश्वरी के लिए जगदीश ने मैनचिस्टर में इन्जीनियर लड़का देखा था पर बाबूजी माने नहीं, कहा—"तू डाक्टर बनकर सात समुन्दर पार चला गया, येभी चली जायेगी तो यहां अपना कौन रहेगा ? तेरे साथ हम लोगों का जाना तो सम्भव है नहीं।" जगदीश ने एक बार भी अम्मा-बाबू जी से इंग्लैंड चलने के लिए नहीं कहा था, इसीलिए वहां जाने की सम्भावना वाली बात अन्दर की एक कचौट थी, न जा पाने की असमर्थता का दर्द नहीं था उसमें। बस इतनी भर बातचीत हुई थी बाप-बेटे में, तोते

की तरह पाठ रटता बेटा अनायास ही मूक हो गया था। बाप से जो कुछ जाना, सीखा और पाया था उसके बदले मे सिक्कों की थैली भेज देता था। एलिजा को भारत भ्रमण के लिए लेके चला गया था जगदीश तब कहीं अम्मा के आंसू फूटे थे। मन ही मन अधपिघली गंधक अधिक तीव्र हो गई थी। बहू के लिए सहेजी साड़ियां, जेबर और मन की हुलस, यकायक ही आंखों से वह निकली। कांच के टूटे खण्डहरों से तो आंख बचा लेती अम्मा पर हर करवट में चुभता कांच का टुकड़ा तड़फड़ा देता। रामेश्वरी शिवलिंग पर जल चढ़ाती तो आंसू भी चू उठते। औरंगजेब ने शाहजहां को सल्तनत के लिए तड़पा-तड़पाकर मारा था, भरी-भरी आंखों से धुंधले ताजमहल को ताकता उसका मन न जाने कितने केसर के बगीचों में भटक के कबूतर की तरह किसी मीनार पर जा बैठता किन्तु अम्मा-बाबू ने तो सपना बोया था, साकार भी हुआ स्वप्न पर कितनी दूर ? ज्वर से तप्त कलाईयां ताजगंज की अज्ञात कोठरी में कांपती और डाक्टर बेटा सात समुन्दर दूर गोरी-गोरी कलाईयों पर उंगलियां फेरता होता, उसका स्टैथिस्कोप अपनी मां की धड़कनों में पेवस्त पीड़ा को न सुन सका, वियोग के जहर पर दौलत का मसनवी अमृत भेजता रहा।

जिस दिन रामेश्वरी आई थी, द्वार पर ही कन्नू चन्नू को सीने से चिपका लिया था. जाने कितने दिनों का पिपासित एकाकीपन और शून्य उनके सीने में धड़क रहा था। अदृश्य में खोये-खोये से बोले थे— 'तू यहां क्यों इन्हें ले आई ? यहां है ही क्या ?" शाहजहां गार्डन में झूमते सुमनों का रंग, तालाब में तैरती बत्तखों की शान से उठी गर्दन और ताजमहल पे चढ़ा प्रेमकामुकुट, सब कुछ ही तो बाबूजी के लिए निरर्थक हो गये थे। अम्मा चली गई तो उनके लिए रह ही क्या गया था ? एक बेटा निर्यात करके और मिलना ही क्या है ? अम्मा के साथ घर भी चला गया था, सिर्फ मटमैली दीवारें और आंगन भर घास के अलावा बचा ही क्या था ? बाबूजी हटे तब रोई थी रामेश्वरी।

रसोई में चावल, दाल और नमक के सिवाय कुछ नहीं था। रोज खिचड़ी का भोग लगा बाबूजी सारे खटरागों से कतरा चुके थे, मानो भूख मिटाने के लिए इतना कुछ काफी है। बेटी की प्रश्न पूछती आंखों से कत-

राने के लिए कन्नू चन्नू को रिक्शे में कहां-कहां नहीं घुमाते रहते। ऐसा ही स्वप्न उसने देखा था, सोते-सोते लगा था कि बाबूजी अन्तिम सांस छोड़ रहे हैं, उनकी आंवाज घरघरा रही है, वो किसी को पुकारना चाहते हैं और न पुकार पाने की व्यथा नागदंश की भांति फैल गई है। किसी को छूने की आतुरता में उनके हाथ शून्य में लटके हिल रहे हैं और आगरा का मकान मातम करने वालों से भर गया है किन्तु वहां एक व्यक्ति अभी भी नहीं पहुंचा है, जिसका कि वहां इन्तजार है।

गाड़ी में बैठी रामेश्वरी को अश्वनी ने समझाया था और कहा था—"तुम्हारा बहम है, बाबूजी ठीकठाक होंगे।" गाड़ी चली तो उदास स्वर में कहा था—"एहतियात के तौर पर तार दे देना पहुंच कर, कोई बात हुई तो मैं फौरन आ जाऊंगा और अगर ठीकठाक हों तो ज्यादा रुकना मत।"

जाना एक व्यथा थी, वापसी भी रामेश्वरी के लिए एक मजबूरी है। किन्तु जब चम्पे के फूलों की महक में दम घुटने लगे तो ये आना-जाना रुक भी कैसे सकता है? रामेश्वरी को लगा कि जीने के चक्कर में विश्व का हर आदमी सुख के क्षितिज खोजते-खोजते इतना भटक गया है कि सिर्फ स्मृतियों, सपनों और सम्भावनाओं से जुड़ने की अनुभूति प्राप्त करनी होती है। आदमी की आदि प्रकृति अतृप्ति और मकड़ी के जालों में फंसी आज छटपटा रही है, वेदान्त बाईबल, कुरान और प्रवचन उसे कहीं भी सहारा नहीं दे पा रहे हैं।

शादी के बाद जम्मू पहुंच बहुत जल्दी खत लिखने की हुलस में कितनी प्यारी गन्ध थी। चम्बे की पीली कलियों का महकता तन-मन, बकुल के छननार पेड़ों पर गाल छूते मीठे-मीठे फल और नहर की कल-कल ध्वनि उसे विभोर किये हुए थी। कलम उठाई तो बहार का पराग ही झर गया। अम्मा बाबूजी के एकाकीपन ने पहाड़ी के मोड़ों से झांकते चीड़ के दरखतों की छेड़छाड़ को उदासी में बदल दिया। कितनी उम्मीद थी जगदीश के आने की? सिर्फ रुपया आया और आया बधाई तार। मानो अम्मा-बाबूजी ने जगदीश को सिर्फ रुपयों से पाला था और उसी को लौटा के वो कर्त्तव्य पूर्ति कर रहा है। डोली में बैठी बेटी के मेहदी लगे हाथों में तार थमा के स्वयं निर्जीव से खड़े हो गये थे बाबूजी! रामेश्वरी की भीगी

आंखों में कड़वाहट उभर आई थी।

चावल दाल के डिब्बों पर ढक्कन लगा, बाबूजी की मेज पर फैले कागजात देखती रही। अस्सी हजार के उपरान्त पास बुक में एन्ट्री ही नहीं कराई गई थी। रामेश्वरी ने डाक्टर बेटे के विदेश पहुंच जाने पर आंगन में जुड़ी भीड़ को देखा था। इक मंजिला मकान अनायास ही गगन-चुम्बी अट्टालिका की भांति ऊंचा हो गया था, अम्मा-बाबूजी के भाल दप-दप कर रहे थे। रोज अम्मा-बाबू लड़की वालों को जगदीश के आने की सम्भावित तिथि के बारे में सूचना देते। घर में लड़कियों के चित्रों का पूरा एलबम तैयार हो गया था। किन्तु तारीखें बदली गईं, फोटो आना बन्द हो गये, कुछ लोग हताश हो फोटू और जन्मपत्री वापस ले गये पर जगदीश नहीं आया, आता रहा निरन्तर हर माह रुपया। आंगन की चह-चहाट को सन्नाटे की सनद मिल गई, अम्मा का माथा पूजा में अधिक देर झुका रहने लगा ओर जगदीश के नाम पर बाबूजी आंख चुराने लगे। एक मोटे लिफाफे में सूचना के साथ अपना और एलिजा का चित्र भेजते हुए अशीर्वाद मांगा था जगदीश ने। अम्मा, बाबूजी ने खत भेजकर आशीर्वाद का कर्त्तव्य पूरा कर दिया था फिर एक दूसरे से आंख बचा रोने के ठिकाने तलाशे थे। अम्मा ने माथे की चोट पर दवा लगवाते हुए रामेश्वरी को झुठ-लाया था—"ये मरा दीवट भी ऐसी जगह बना है कि मूड़ बचाना भी मुश्किल है।" रामेश्वरी ने ठाकुर चौकी से रक्त पोंछते देखा था अम्मा को। करुणा से भरके मां को अंक में भर लिया था। एक गहरा सन्नाटा घर के साकेत को निगल रहा था।

फिर भी अम्मा थी तो आंगन को लीपा जाता, सफाई होती और तुलसी पर दीपक जलता। हर कमरे की बत्ती जला दी जाती, बाबूजी गीता पढ़ते और अम्मा पुरातन सनातनियों की भांति मूर्तियों के आगे सिर झुकाये रहतीं। रोशनी निखरी होती किन्तु दृष्टियां खो जातीं, आवाजें गुम हो जातीं वक्त भोजपत्र पर लिखता—कामना विष बीज है, मोह के छत-नार वृक्ष की छाया से निकलना आसान नहीं है।

आंखें रात-रात जागने के लिए सोने का बहाना करतीं। अन्धेरे में चमगादड़ की भांति प्रश्न उभरते—सो गये क्या ? सो गई क्या ? चम-

गादढ़ फड़फड़ाता, तेजी से जाते वायुयान के पीछे छूटी ध्वनि शब्द करती —"हूं।" मानो ये हूं युधिष्ठिर की "हां" थी जिसका अर्थ कृष्ण के पंचजन्य शंखनाद में डूब गया था। भारत आई एलिजा सास-श्वसुर को त्रैता युग की धरती से निकली मूर्तियों की भांति निरखती चली गई।

डोली चली तो छाती पीट-पीट के बेहोश हो गई थी अम्मा। ताजमहल का श्वेत रूप, उसकी मीनारें और उद्यान सब पीछे छूट रहे थे। सिमट रही थी व्यथा जननी की। अम्मा और बाबू के मध्य गूंगे संप्रेषण की कल्पना कचोट रही थी। दो कौर ठूंस के डकार निकालते बाबूजी तृप्ति का अभिनय सहज ही कर लेंगे। हर दिवस को उपवास में बदलने की चतुराई अम्मा भी कर लेतीं किन्तु इस संयुक्त अभिनय में अन्दर ही अन्दर कातरता सबल होती रहती, वीतरागी मुखौटे लगाके कैसे मुस्कराते रहें, रामेश्वरी सब जानती थी।

तार रात में पहुंचा था। अश्वनी की भुजाओं में अदृश्य पड़ी सो रही थी। अश्वनी उठा तो आंख खुल गई। तार पढ़ा तो पलक रुक गये, उसका आर्तनाद नदी के किनारे-किनारे जाने कितने वृक्षों को झझोड़ आया। रंगनाथ जी के मन्दिर में स्फटिक शिवलिंग का चिर ज्योतिर्मय दीपक बहक उठा था, वैष्णों देवी के मन्दिर तक उसका दर्द पहुंचा और फिर लौट आया। अश्वनी और वो, दोनों आगरा गये थे। लाख समझाने पर भी बाबूजी जम्मू नहीं आये, कहा था—"पैंतीस वर्ष सशरीर साथ रहे तो अब अदेह को अकेला छोड़ जाऊं? बड़ा दुख सहा था उसने। सुख के करीब पहुंची तो जलयान ने दिशा ही बदल ली। तू जा रामेश्वरी. चली जा। तूने भी बहुत सहा है पर यहां का सन्नाटा, तिल-तिल कर मरता आदमी का मन उसे यहीं छोड़ जा।" फिर अदृश्य में हाथ हिलाते बोले थे— "कभी नाव, नदिया और माझी सभी कुछ थे, आज नदी है और नाव है, उसे बहने दे, जिस दिन डूब जाए वहीं तक रिश्ता है।" रामेश्वरी सिसक उठी थी।

कन्नू और चन्नू ने शायद टिड्डा पकड़ लिया था। उनका हर्षनाद सुन अतीत में डूबी रामेश्वरी जाग उठी। आंगन में कन्नू चन्नू के साथ बाबूजी भी भाग रहे थे। रामेश्वरी चौंक उठी, उसने कहना चाहा कि कहीं गिर

न जाएं बाबूजी, किन्तु रुक गई। एक युग भर कोयले की खान का अंधकार सहके जो जुगनू जैसा क्षण मिला है, उसे क्यों मरने दिया जाये?
गाड़ी चली तो बाबूजी ने मुंह फेर लिया था, मानो सब कुछ जुड़ा हुआ तोड़ लेना चाहते हों।

हथेली में रखे जम्मू तवी के टिकट पसीज उठे थे।

खिड़की के पीछे एक श्मशान रामेश्वरी को दिखाई दे रहा था।। जहां कोई सिर्फ मौत का इन्तजार करता रहेगा। मौत का इन्तजार या उन दो हाथों का जिसके द्वारा दी अग्नि उन्हें मरने के बाद शान्ति दे सकेगी।

पर क्या श्मशान की मरीचिका पूरी होगी ?

●●

जंगल बबूल का

दूज के चांद के आकार की चमचमाती मेज के साथ लगी कुशंन चेयर पर बैठे हुए अभिजात ने स्वयं को अकेला महसूस किया मानो उसका वो हाथ जिसे कोई थामे हुए था किसी के साथ चला गया हो और सरकारी अरण्य में वह पूरी तरह एकाकी और दिशाहीन होकर रह गया हो। मेज की चमचमाती पालिश में अपना धुंधला अक्स निहारने के बाद सिर की टोपी एक ओर रखते हुए अनमने भाव से उसने एक फाइल को अपने सामने खोल लिया। साफ सुथरे फाइल कवर में नत्थी कागजों में अंग्रेजी वर्णमाला की झंडियां लगी हुई थीं जिससे अभिजात नामक नए मंत्री को सही पृष्ठ खोलने में असुविधा न हो। ब्रांज से बने कलम दान में हरी और लाल स्याही भरे कलम रखे हुए थे जिनसे लिखे जाने वाला हर शब्द एक निर्णय,एक अहम प्रश्न या इतिहास का रूप ले सकता है। काली या नीली स्याही मे उसने आजतक जहां कहीं हस्ताक्षर किए थे वे अर्जियां थीं,अपीलें थीं या उसके अपने चैक थे किन्तु आज इन सभी कलमों केघर्षण रूपी परिणाम से उभरे हस्ताक्षर किसी भी कंपनी के···उसके निजी और सरकारी अहलकारों की किस्मत के वारे-न्यारे करने की शक्ति रखते हैं। कलम घूमा और कोई टोयटा, ब्यूक या प्लाईमाउथ जबरन इस्तेमाल के लिए कोई छोड़ आएगा। किसी अज्ञात खाते में पूंजी पनप जाएगी और लोग उसकी भ्रकुटि पर आतंकित और मुस्कराहट पर फूल वर्षा करेंगे।

पर अभिजात के हर गर्व और चेष्टा का खुद उसकी नजर में मूल्य ही क्या रहा है? जिसे दिखाने के लिए राजनीति के हिमालय पर चढ़ने के लिए उसने क्या नहीं सहा, वो शालू है कहां? उसकी आंखों में उभरती

जिस चमक और पेचीदा बलों को देखने के लिए अभिजात अनचाहे भी राजनीति के कांटों पर चलता ’हा उस शालू को अब तलाशा भी तो नहीं जा सकता है ? और शालू की शांत मुद्रा धारण किए फोटू वह आश्चर्य और हैरत भी तो अभिजात को दिखा नहीं सकती है। शालू के विलीन होते ही उसे लग रहा है कि ऊंचे मचान पर चढ़ाके उसके नीचे उतरने के रास्ते बन्द कर दिए गए हैं, सीढ़ी हटा ली गई है···।···शालू की निगाहों में झांकती नफरत से चुनौती ग्रहण कर ही तो वो विलोम पथ पर चला था।···मौत उसे आदर्श की संहिता में ढाल इतना निर्मूल कर देगी, ऐसी सम्भावना उसकी कल्पना में भी कभी उदित नहीं हुई। हर बार शालू से मिली वितृष्णा या घृणा को उसने एक परीक्षा और विडम्बना भर माना था किन्तु पकड़ने की कोशिश में मिलन असम्भव हो जाएगा ··उसके लिए किसे दोष दे···?···स्वयं को···राजनीति को···या शालू को दोषी ठहराए ?···पर इससे परितोष···या वर्तमान तो नहीं बदल जाएगा···। ···चूर-चूर दर्पण में अपनी और शालू की छवि तो एक साथ उदित नहीं होगी···।

फाईल के हर अक्षर में शालू दिखाई देती है···।···यदि हर अक्षर को देखा तो अनगिनत शालूओं में अचानक ही पांच साल गुजर जाएंगे···। ···शायद फिर वह मंत्री नहीं रह पाए···।···पर आज तो एक शब्द भी पढ़ना असम्भव है···।···अंग्रेजी के अक्षर कभी चीनी और कभी जापानी अक्षरों में बदल जाते हैं और फिर जैसे कोई अक्षरों को शफिल करके एक गुलदस्ते में बदल देता है···।···हजारों गुलदस्ते, हजारों हाथों में पहुंच जाते हैं और गुलदस्तों से भरे हाथ अभिजात की ओर बढ़ते हैं। अभिजात हाथों से जुड़ी कलाईयों में एक खास कलाई को तलाशता है—।···गुलदस्तों से अभिजात घिर जाता है···।··· वो शालू को पुकारना चाहता है पर उसका कंठ भर जाता है···।···लोग पूछेंगे तो अभिजात क्या बतायेगा ?···धरती, आकाश और देश पर उसके अनगिनत व्याख्यान क्या एक हाड़ मांस धारी नारी के बदन से उभरे गंध संवाहन भर थे···!···नहीं···।···जब खेलना ही है तो नाटक को पूरी तरह निभाएगा। आत्मा ओर संवेदन को ताबूत में दफ़न करके ही तो

राजनीतिज्ञ अपनी सफलता के किरीट को संभाले रहता है।

—"साब जुनेजा साहब और दूसरे अफसर···!" चपरासी बा-अदब कहता है।

—"हां भेज दो," फाईल को यथास्थान वापस रख अभिजात बुदबुदाता है। सामने साफ अकलंक डिस्टेम्पर पुती दीवार पर गांधी की तस्वीर पोपले मुंह से तोतले और मीठे मूक शब्द बोल रही थी। आंखों में रामराज्य का सुनहरा सपना पुतलियों के कैनवास पर लेटा हुआ था···। ···अभिजात को यह सपना एक बकवास सा लगा। आदमी चार कदम तो पीछे लौट नहीं पाता है फिर युगों पीछे कैसे लौट सकता है? आदमी अब विश्वास ही किस पर करता है···? ···नौकरी, लाईसेंस और ठेके···मुट्ठी में दबी रिश्वत पर निर्भर रहते हैं। औरत की मुस्कराहट की ज्यामिति भी सुखसाधन और प्रसाधन की उपलब्धियों पर निर्भर है···।···मन्दिर, मस्जिद, कारखाना या दवाखाना हर जगह पैसा चलता है अन्यथा तिरुपति मन्दिर में लगी दर्शनार्थियों की मीलों लम्बी कतार में खड़े हो जाओ और खम्बे गिन के लौट आओ।

जुनेजा साहब बा-अदब अपनी पूरी टीम के साथ आते हैं···। अतिरिक्त सचिव, उप-सचिव,···सहायक अफसर···।···बाहर से लाकर कुर्सियां डाली जाती हैं। मुस्कराहट की सीमित ज्यामिति अधरों पर खेलती रहती है ··।···चाय के प्याले खनकते हैं··।

स्साले हिप्पोक्रेट···।···कैसे आज्ञाकारी और निश्छल बने बैठे हैं···। ···इन्हीं के हाथों ब्यूरोक्रेसी के फीते कसे जा रहे हैं। मंत्री के कानों में ऐसा मन्त्र फूंकते है कि कठपुतली बन जाता है और बाहर कहते हैं—हम तो हुक्म के गुलाम हैं। अंग्रेजों को हिन्दुस्तानियों की मुफलिसी और कमजोरियों का सुराग ये ही देते रहे थे।···मन्त्रियों की जेबों में सुनियोजित रूप से कालाधन इन्हीं की तिकड़मों से पहुंचता है और सरकार या मंत्री बदलते ही ये पुरानों के ऐब गिनाना शुरू कर देते हैं। बयान कुछ इस तरह लिखते हैं कि चाहे जैसा भी अर्थ निकाल लो। चन्द रोज कुत्ते की तरह दुम हिलाकर स्वामिभक्ति प्रदर्शित कर ऐसी पट्टी पढ़ाते हैं कि मंत्री महोदय अपनी भाषा और लिखावट भूल जाते हैं···जो इन्होंने लिख दिया

फर्राटे से तोते की नाई पढ़ दिया । जहां कहा, वहीं हस्ताक्षर झाड़ दिए। अभिजात इस फीता-शाही से परिचित है लेकिन क्या वह खुद इस फीता शाही को बदलेगा ?·· बदलने की चेष्टा की तो पांच साल पांच दिन में पूरे हो जाएंगे । आई. सी. एस. के वारिस आई ए. एस. अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी नस्ल हैं। उनकी आंते पैनी और दांत देखने में मोतियों जैसे हैं। गांधी···प्रजातन्त्र और राष्ट्रभाषा को एक खिलवाड़ की शक्ल में बदलने के बाद अब इन की रीढ़ काफी मजबूत हो गई है जो हर सत्ताधीश राजनीतिज्ञ की पंगुता को सहारा देने में और मतलब निकालने में समर्थ है।

चाय के मध्य उभर आई खामोशी को तोड़ते हुए कई अधर समवेत स्वर में कहते हैं—"सर आप तो इंजीनियर हैं···आपके आटो डेवलपमेंट परफार्मेंस पूरा हिंदुस्तान जानता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हम आपके आधीन काम करेंगे अन्यथा पहले मंत्री महोदय···बाप रे···। उनके लिए तो ट्रक और बैलगाड़ी की एक्सेसरीज में कोई फर्क ही नहीं था।"

पालसन उसी के लिए खर्च हुआ है, अभिजात जानता है लेकिन कुछ कह नहीं सकता···।···झूठा नहीं ठहरा सकता । आदमी कुशन के गद्दे की तहों के साथ हिप्पोक्रेट भी हो जाता है···बिना शतरंज जाने भी चाल चलता रहता है···।

अभिजात बैक रेस्ट पर गर्दन टिका गम्भीर स्वर में कहता है—"पहले मैं एक इन्सान हूं फिर इन्जीनियर, उसके बाद मन्त्री। एक तकनीशियन की शक्ल में और फिर व्यापार के सिलसिले में मेरे पास अपने तजुर्बात हैं, फाईलों की धीमी चाल का मुझे कटु अनुभव है···फिर भी चुनाव के दौरान सोती रही इन फाइलों को पढ़ने में समय लगेगा···।···इस बीच आप संबंधित अनुभागों और एजेन्सीज को सूचित करदें कि उनके केसेज पर ध्यान दिया जा रहा है···।···एक-एक फाईल पढ़ कर मैं जुनेजा साहब से डिसकस करके निर्णय देना शुरू कर दूंगा।"

खामोशी की कन्दील फिर टिमटिमाने लगती है। स्वामीनाथ फर्राटेदार अंग्रेजी में कुछ कहता है पर उसे अनसुना कर अभिजात फिर अपनी बात शुरू करता है—"मैं आपके नार्म्स और सिस्टम में तब्दीली की जगह सिर्फ थोड़ी तेजी की आकांक्षा करूंगा। हर काम समय से हो तो बाहर

से शिकायत ही क्योंकर उठेगी ? ए स्टिच इन टाइम सेव्स नाइन…। जनता मंहगाई से उतनी परेशान नहीं होती है जितनी कि असुविधा और देरी से…।

सचिवों की इलेविन आज्ञाकारी विद्यार्थियों की तरह सिर हिलाती है। जानते हैं कि सिर्फ परदे बदले हैं रंग बदलते हैं.. शेष पहले जैसा ही रहता है। अभिजात भी जानता है इन्हें। कुत्ते की दुम सिर्फ हिलती है। .. सीधी कभी नहीं होती…।…आर. टी. ओ. दफ्तर से अपने पहले दो ट्रकों का परमिट प्राप्त करने में उसने क्या फजीहत नहीं सही थीं। इससे पूर्व इंडस्ट्री महकमे से कर्ज प्राप्त करने में क्या नहीं भोगा? पर एक बार कमीशन नियत हो गया और चेहरे पहचाने हो गए तो कानून के जबड़ों से गुजरना कितना आसान हो गया था। इसीलिए शायद अनेक विरोधाभासों के मध्य आचार्य रजनीश की एक बात पसन्द आई थी—रिश्वत को कानूनी छूट दे दो…लोगों का सिर्फ रुपया खर्च होगा…भाग दौड़ और परेशानियां कम हो जाएंगी।

सचिवों का दल फर्शी सलाम करता चला जाता है। अभिजात एक बार उठकर अटैच्ड टायलट के दर्पण में अपना चेहरा देखना चाहता है। क्या बहुत बदल गया है वो…?…क्या शालू के लिए जिस रास्ते पर चुनौती के रूप में चल पड़ा था उसमें पूरी तरह हार गया है…?…क्या शालू की बात शत प्रतिशत सही हो गई…? पर अन्दर से तो नहीं बदला है…।…अपने से दूरी बढ़ गई है। अन्दर की बात पूरी तरह से कह नहीं सकता है…।…मन की सात परतों के अन्दर खुद को बार-बार तलाशना पड़ता है…।

"…यू आर ए हैंडसम डैविल अभिजात…।"…शपथ लेने से पूर्व मुख्यमन्त्री ने कहा था—"इंजीनियर,…व्यापारी……और.. अब पालीटिशियन…त्रिमूर्ति…दत्तात्रेय !"

पर अपने जिस चौथे रूप के गिर्द वो फूलों की क्यारियों के मध्य, शालू के साथ जीना चाहता था…जाने कहां मिट गया वो चौथा स्वरूप…? कल्पना के संसार की हर शाख बबूल की टहनी बनके रह गई है…पीठ टिकाई नहीं कि शूल चुभा…।…आदमी का चेहरा सहज ही बदल जाता

है यह बात शालिनी उर्फ शालू को मालूम थी। उसे खुद अपने अन्दर उसका भास नहीं था···।···आज वक्त के चक्रव्यूह ने उसके इस रूप को बीमार घोड़े की तरह अस्तबल में हांक दिया है ··।···फुर्सत नहीं है और न ही रास्ता ··कि गर्दन झुकाए अस्तबल में खड़े अपने कल्पना अश्व के पास पहुंच सके···।···पहुंचकर होगा भी क्या···?···क्या शालू मिलेगी ? ···शालू है कहां अब ··? ··· उसकी आत्मा उसे तलाशने के लिए तड़पती है और तभी तालियों की गड़गड़ाहट में भूल जाता है शालू की बात। ···व्यंग्य की कितनी मोहक ज्यामिति शालू के अधरों पर उभरती थी ···अभिजात तिलमिला उठता था···। तुम्हारी इस व्यंग्य धरा पर ही अपने कर्म का यज्ञ पूरा कर प्यार की मोहर रखूंगा शालू···।···मुट्ठियां कस जाती थीं ···।

दुत्कारे गए कुत्ते की भांति उसका स्वाभिमान दुम हिलाता रह जाता था। क्या करे कि शालू की धारणाओं के शिव धनुष को छूते ही राख बना सके···?

उसके ट्रक का फोल्डिंग प्लेटफार्म खाली हो गया था···पर भीड़ अभी भी खड़ी थी। अभिजात का अपना इन्वेंशन था ट्रक-कम-प्लेटफार्म···। ट्रक की रेलिंग एक लीवर के खींचते ही फैलकर पूरे ट्रक को एक स्टेज के रूप में प्रस्तुत होना पड़ता। भाषण देने या नाटक के लिए मंच तैयार···। चक्का घुमाते ही कैनवास की केनापी उभर आती···धूप और वर्षा से पूरा बचाव चुनाव से पहले ही बुकिंग हो गई···। दो और ट्रकों को मोडीफाई करना पड़ा। एकदम नया आविष्कार·· ।···हर पार्टी फून पर आग्रह करती··· हमें चाहिए···। मोबाईल स्टेज का किराया बिना मांगे चार गुना मिलने लगा···।···अभिजात स्तब्ध रह गया···।

भीड़ के हटने का इन्तजार कर रहा था कि शालू आ गई—"आपका है यह तम्बू ट्रक···सिर्फ दस मिनट रोकेंगे···।" नया नाम मिला·· आग्रह कर स्वीकृति का इन्तजार किया कहां गया···? ···अभिजात भी तो बस देह दर्शन करता रह गया था।

ट्रक पर चार पांच स्त्रियों के साथ खड़ी माईक पर बोल रही थी शालू —"मैं चेतना क्लब से आई हूं। बेईमानों को वोट मत देना···।···अमीरों

को वोट मत देना···।···व्यापारियों के चमचों को मत चुनना अन्यथा तुम वायदों की बरसात में सूखते रहोगे और वो मुनाफा भुनाते रहेंगे। उनसे पूछो कि रेल में भीड़ कैसे कम करेंगे···? ··राशन आराम से कैसे देंगे ···? रिश्वत कैसे रोकेंगे ··?···बांध बनते है पर बाढ़ें आती हैं···।··· नहरें निकलती हैं पर सूखा पड़ता है···उन योजनाओं में क्या कमी है और तुम उन्हें कैसे पूरा करोगे। उनसे शपथ लेने को कहो कि रोज दो घंटे पैदल चलेंगे। गर्मियों में खलियानों में जायेंगे और वर्षा के दिनों में झोपड़ियों में रहकर हिन्दुस्तानी की दर्द भरी परेशान ज़िन्दगी से जुड़े रहेंगे···।"

कुछ नई ··कुछ मार्मिक और कुछ बेतुकी बातें सुनता है अभिजात···। पर उन बातों में सच्चाई है ··इस सत्य को भी एहसासता है। जानता है कि नेता लोग जनता की तरह सड़ा गेहूं नहीं खाते हैं, उनके दिल पर कूड़ेदान से खाना बीनते हुए बच्चों का दर्द सहज ही धुल-पुछ जाता है पर पूरे विश्व का सांचा ही अमानवीय धरातल पर उतर आया है। लेबनान का सात वर्षीय बच्चा खिलौने की जगह छुरा या तमन्चा पकड़ने लगता है। कौमार्य के नाम पर वियतनाम में गृहस्थी के लिए औरत खोजना मुश्किल नहीं अपितु असंभव है। गरीब देश कुछ अन्दर से और कुछ बाहर से गल और कट रहे हैं।

लड़कियां नीचे उतर आती हैं। अभिजात हिचकिचाते हुए पूछता है —"आप लोग ?"

"हम चेतना क्लब चला रहे हैं। भाई भतीजावाद···और ढोल की पोल खोलते हैं··औरत जात को बदलना हमारा ध्येय है · क्योंकि औरत पुरुष को संग्रह के लिए प्रेरित करती है। औरत बदल जाए तो बेईमान आदमी के लिए जगह कहां होगी ··?"

एकदम नया मनोविज्ञान···। पर लड़की है जानदार···।···शालू अभिजात को भी कचोटती है—"आज का वैज्ञानिक यश और धन चाहता है, इंजीनियर रिश्वत और व्यापार की तरफ भागता है···। आप इंजीनियरिंग और राजनीति दोनों के विशेषज्ञ दिखाई देते है। चुनाव के लिए क्या बढ़िया आविष्कार किया···? जल्दी ही मालदार बन जाएंगे।"

अभिजात का चेहरा लाल हो जाता है। शालिनी के साथ की लड़-कियां खिलखिलाती हैं—"ट्रक···कम···स्टेज, इंजीनियर-कम-व्यापारी अर्थात्, टू इन वन···।"

स्कूल से पढ़ाके निकलती है शालू तो रोज सामने पड़ता है अभिजात···। ···शालिनी अवहेलना कर निकल जाती है पर मन मे अच्छा लगता है। लेकिन तभी कनपटी पर कुछ सरसराता है—व्यापारी है आदमी का रक्त पानी के भाव खरीदते हैं व्यापारी··। हर व्यापारी महत्वाकांक्षी होता है। पूरे देश को अफीम की गोली की आदत यही व्यापारी डालता है···।···सुख के लिए हरम तैयार कर अफसरों के दस्तरखान पर अध-नंगी औरतें यह व्यापारी ही पहुंचाता है···।···अजगर की सांस से ज्यादा खिचाव होता है इसके व्यक्तित्व में ··।···फिर भी अभिजात पार्श्व में चलता रहता है ।···शालू के व्यंग्य सहज पीकर कहता है—"शालू··· बात अन्दर की है···जिसका स्पन्दन दौलत और यश की मीनारों पर नज़र भी नहीं डालत्ता है···।·· तुम मेरे प्यार को···मेरे पेशे से मत तुलना करो···।···तुम कहो तो नौकरी कर लूं?"

शालिनी मुस्कराती है···कितना फास्ट है? कितनी जल्दी कट शार्ट कर शालिनी से शालू पर उतर आया···?···पर इतनी जल्दी समपर्ण नहीं करेगी। क्या पता कि सिर्फ चेहरे पर मुलम्मा चढ़ा बोल रहा हो···। ···फन्दे में फंसते ही जेवरों के बोझ तले बन्दी बना···स्वयं पार्टियों, दूसरे देह सुख का आदान-प्रदान शुरू कर दे···।···आदमी सहज ही केंचुल उतार, नया रूप धारण कर सकता है इसलिए अभी खूब परखना होगा, जिससे चेहरा न बदल सके···।

"क्या सोच रही हो ··?" अभिजात पूछता है।

"यही कि चापलूसी अच्छी कर लेते हो··।···प्यार के व्यापार में भी नफा ही नफा कमाना चाहते हो।" शालिनी कहकर अभिजात के चेहरे पर प्रतिक्रिया परखना चाहती है, फिर अपने सामन्य मूड में लौट बोलती है—"बात इतनी आसान नहीं है। कहां लखपती अभिजात का परिवार और कहां गरीब शालिनी···।···पर शालिनी का भी एक अस्तित्व है जिसका सुख के साथ विनिमय नहीं कर सकता है···। शालिनी चेतना संघ

नहीं छोड़ सकती है और शायद आवारा लोगों की तरह भटकना तुम्हारे परिवार के लिए शोभनीय न हो···।···आदमी की निचली जमात में उसका उठना बैठना ओछापन नजर आए और एक दिन अपना ही निर्णय तुमको कचोटे···।"

"नहीं शालू! मैं तुम्हारी व्यक्तिगत जिन्दगी पर ताला बन्दी नहीं करूंगा । मुझे तुम अनुकूल ही पाओगी···।·· हम ऐडजम्ट करेंगे···।··· तुम, तुम रहोगी और मैं वही जो हूं।" बड़ी तकलीफ हुई थी अभिजात को कहने में अन्यथा प्यार को जुबान की कहां जरूरत होती है···? अहसास से ही पता चल जाता है उत्तर।

शालिनी गंभीर हो जाती है—"विश्वास नहीं होता अभिजात। जिंदगी को जहां तक परखा है वहां विवाह केवल भौतिक परिवर्तनों तक सीमित नहीं रह पाया है जहां चमकीले कपड़े, लिपिस्टिक और औरत के लिए एक नए घर तक की बात हो। पूरी रासायनिक क्रिया प्रतिपादित होती है—स्त्री और पुरुष का अस्तित्व, व्यक्तित्व और सोचने के ढंग बदल जाते हैं। पैरों के नीचे की जमीन ज्यादा खुरदरी या ज्यादा चिकनी हो जाती है। वातावरण आदमी को जिस्म के जरासीमों से ज्यादा बीमार बना देता है ··।···पलकों के फलक आसानी से पीले पड़ जाते हैं···।··· अभिजात तुम्हें अपने वर्ग में ही शालू से ज्यादा अच्छी लड़कियां मिल जाएंगी।"

"शालू! इतनी दूर तक सिर्फ कांटों की सीमा मत देखो! रास्ते में फूल भी हैं! फिर क्या एक नई जिन्दगी की शुरूआत कभी नहीं हो सकती है···?" अभिजात के स्वर में याचना उभर आई थी।

शालिनी को लगा कि अभिजत उसके मानस का सही पुरुष है···। फिर क्यों नहीं उसकी बात पर यकीन कर लिया जाए·· ?·· जिन्दगी में कोई भी साथी खुली किताब की तरह कब और कहां मिलता है···?··· अपारदर्शी माध्यम में लहरों के मध्य ही अधिकांश एक दूसरे के हाथ पकड़े जाते हैं···चाहे फिर अनुबन्ध गाढ़े हो जाएं या फीके पड़ जाएं···। चेतना संघ को लेकर ऊबड़-खाबड़ पथ पर बार-बार चप्पल टूट जाने की आशंका तो पाली थी पर साथी पा जानेकी परिकल्पना तक नहीं पहुची

थी। ताई का कहना तो यही है कि इन लछनों से कुंआरी ही डोलेगी शालिनी···।

शालिनी उस दिन बात अधूरी छोड़ घर में घुस गई थी पर आखिर गम्भीरता से सोचना ही होगा···।··· जहां जाती वहीं दूर अभिजात खड़ा दिखाई देता। सुमित्रा ने कहा भी था—"इडियट···।··· इतना बढ़िया चांस मिस मत कर शालिनी ।···खुद को बदल ले या तू फटे हाल दी ग्रेट लेबर लीडर को ले ले और मैं···मिसेज अभिजात बन जाती हूं ।"

"लालची···।" शालिनी ने सुमित्रा के चिकोटी काटी थी···"थोड़ा और तपने दे···। धूप और पानी सहने दे··।···प्यार का एण्डयोरेंस ट्राईल है यह···खरा उतरा तो वर लूंगीं अन्यथा वह मुझे भूल जाएगा।" धूप से त्रस्त अभिजात को रिक्शे वाला कब लादकर ले गया शालिनी को पता ही नहीं चला।

ताई कहती—"क्यों सता रही है चुड़ैल··।···ऐसे वर के लिए तो सावित्री भी देर न करती।"

भाषण और साबुन बांटने गई थी गन्दी बस्ती में। पर अभिजात नजर नहीं आया। शालिनी की नजरें उसे खोझती है। हताश हो सोचती—थक गया शायद··। एक कड़वाहट अन्दर ही अन्दर घुमड़ उठती—सेठ की इज्जत बचाने के लिए पिता ने बलात्कार का जुर्म अपने ऊपर ले लिया था। तीन वर्ष तक चक्की पीस अन्तिम श्वास छोड़ दी।उसके बाद सेठ मुरलीधर सक्सेरिया को स्वामिभक्त सेवक के परिवार से कोई नाता नहीं रहा। वर्षों बाद खबर आई थी कि बाप की जगह शालिनी को रखने के लिए तैयार हैं सेठ···। ··पर ताई पिशाच दृष्टि पहचान गई। कहला दिया—सांप का झूठा दूध पीकर लालाजी तो जेल में तर गए···।···अब सेठ जी की और कृपा नहीं चाहिए··।···घर-घर बर्तन मांज ताई ने बी. एस. सी. कराया था···।···नौकरी शुरू करते ही पैसे वालों के प्रति जन्म से सुलगी आग को प्रज्वलित रखने के लिए शालिनी ने बनाया था—चेतना संघ···।···सोचा था भिक्षुणी का जीवन व्यतीत करेगी। पर कांस में धसके भी जिस्म का गुलाब महक जायेगा यह पता नहीं था···। जाने कैसे अभिजात ने प्रेम के लिए उसे चुना··?अन्दर ही अन्दर प्यार की झुलस अंजाने

ही महसूस करती है। भीड़ से परे अभिजात की काया को तलाशती है। ···दो दिन डिलाईट के बाहर भी गाढ़ी शाम तक इन्तजार किया!···अगर अभिजात आ जाता तो सिर्फ हां कहकर समर्पित कर देती स्वयं को। पर अभिजात को तो उसके घर वाले अच्छे इलाज के लिए राजधानी ले गए थे।

पर अस्पताल छोड़ते-छोड़ते अभिजात बदल गया। शालू के लिए वो घुटने नहीं टिकने देगा अपने। शालू के आदर्श की जड़ता पर प्रहार करेगा। राजनीति और व्यापार दोनों में बढ़ेगा·· एक बेदाग अस्तित्व लेकर। शालू की धारणा को निर्मूल कर देगा। अपनी बात बड़ी गम्भीरता से कह गया था। शालू का हृदय धड़क उठा था—काजल की कोठरी से बेदाग कौन निकला है आज तक? शायद यह मिलन की बेला विदाई की अन्तिम बेला है। पर उसने अभिजात को रोका नहीं। प्रार्थना की — तुम सफल हो सको अभिजात···मर गई तो मेरी आत्मा तुम्हारे जिस्म से विवाह करेगी।

गहरे तूफानों में दोनों अलग-अलग खो गए···।···एक दूसरे के लिए आतुर रहकर भी दूरी बनाए रहे। अभिजात सक्रिय राजनीति में आ गया। जनता और विरोधी दल विधान सभा भंग कर चुनाव की बात उठा रहे थे। सत्तारूढ़ दल में फूट उबल पड़ी थी। अभिजात पार्टी के अन्दरूनी तहखाने तक शीघ्र ही पहुंच गया। उसका व्यक्तित्व पुराने खिलाडियों पर हावी हो गया। पार्टी की अभिन्नता के लिए उसके प्रयासों पर लोगों ने सनद दी थी—मोची! पर मोची पार्टी की टूटी मटकी जोड़ नहीं सका और विधान सभा भंग होने के साथ-साथ नए चुनाव की बात होने लगी।

चेतना संघ भी तेजी से हर पार्टी के नेता पर फिकरे उछाल रहा था। सुमित्रा ने टोका भी—"उसका तो लिहाज कर ले। एक दिन तुझे उसकी बनना है ··।"

रफीक बीच में टांग अड़ाता है। साईकिल एक ओर दीवार से टिका दोनों के मध्य आ जाता है—"अब तो सुमित्रा हमारा निकाह मुल्तवी···। पहले इलेक्शन फिर करेंगे विवाह···!"शालिनी उत्तर देने से बच जाती है—विश्वास और प्यार के मध्य टकराहट···।···किसे तरजीह दे···?

जिला पार्टी दफ्तर में हुजूम लगा है। केन्द्रीय सचिव पार्टी के नामों का निर्णय लेंगे···।···जिला प्रधान ने पुराने खूसटों के नाम की लिस्ट पकड़ा दी है···।···बातचीत शुरू होती है···।··· सचिव पहला नाम बोलते —"अभिजात!" जिला प्रधान चौंकते हैं—"यह कैसे!···मेरी लिस्ट में यह नाम तो नहीं था···।" फिर मन मार कर समर्थन करते हैं···।

"सर—।···मेरी इतनी स्टैंडिंग नहीं है कि चुनाव लड़ूं।" अभिजात सीधे इलेक्शन में आने से कतराता है। पर वे उसे रोक देते हैं—"कौन सही है और कौन नहीं, चुनाव के लिए, इसी को देखने तो आया था। देश और पार्टी को तुम्हारी जरूरत है···लोगों के तेवरों की परवाह मत करो ।"

अभिजात चुनाव लड़ेगा·· खबर सैलाब की तरह फैल गई।

शालिनी को अच्छा नहीं लगा···। सुना था पार्टी के आंतरिक भ्रष्टाचार को साफ करने में लगा है अभिजात ··फिर यह चुनाव क्यों···? दल दल में गर्दन तक डूबना क्या जरूरी है? पर उसके लिए वह स्वयं भी तो अभिजात से अधिक दोषी है।

पूरे पांच विरोधी हैं मुकाबले में···सारे के सारे मंजे शतरंज के खिलाड़ी। बाल की खाल निकालने में माहिर। यही तो काम है विरोधी दलों का ··।···शुरू-शुरू में कुछ हिचका था अभिजात किन्तु भाषण शीघ्र ही निखरने लगे ··। फिरका परस्ती···कालाबाजार·· रिश्वतखोरी सब पर करारे प्रहार करता···। विरोधियों के चेहरों की पर्तें भी छील देता···। वोट की बात ही नहीं करता···वर्ग चेतना और गांधी-मार्क्स की इलोक्ट्रोप्लेटिंग तैयार करता रहता···। खुले हुए घूंघटों में शालिनी को तलाशता ··भाषण के बाद उसे मैदान में ढोल की पोल खोलने के लिए देखना चाहता···पर शालिनी ने तो अभिजात की सभाओं का बायकाट कर रखा था। विचार और मन में सोचकर जंग शुरू हो जाती।

रफीक ने सुमित्रा से कहा था—"शालिनी का ख्याल कर अभिजात की मुखालफत नहीं कर पाता हूं, नहीं तो उसके भाषणों की बीन को

बेसुरा करने में क्या देर लगती है···?"···शालिनी को लगा था कि अपने ही हाथ ने चांटा मारा है उसके गाल पे···। शालिनी घर लौट आई थी। कुम्हलाया चेहरा देखते ही ताई चीखी थी—"क्या हुआ मुंहजली···।··· कहां झुलसा के आई है फूल को?"···पर शालिनी भड़ाक से अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लेती है।

मतदान के दो दिन रह गए हैं···। ··सरगर्मियां जोरों पर हैं।···इलेक्शन आर्गनाईजर है हुसैन ··।···जीत की पूरी उम्मीद है पर हुसैन संतुष्ट नहीं है—"अभी काफी कुछ करना है अभिजात साहब। जीतेंगे हम हीं पर पिछले सारे रिकार्ड तोड़ने हैं···। कम्बख्त वो लेबर लीडर·· रफीक स्साला हमारी कायनात में दहशत की तरह उभर आता है·· ।·· मजदूर और मुसलमानों के काफी वोट हैं उसके कब्जे में···।" फिर सिग्रेट का लंबा कश खींच के कहता है—"ठीक है आज उससे ही निबट लिया जाये···।··· ऐसा फसाऊंगा कि साले को जिन्दगी भर चक्कर आते रहेंगे·· ।"

···कूचा शालिगराम में कोहराम उबर उठता है··।···कोई हुजूम को संबोधित कर कहना है—"आप सब जानते ही हैं, मजदूर और कटरे के मशहूर लीडर रफीक साहब को···।···पूरे नमाजी हैं ओर गरीबों के खुदा। पर चिराग जलते ही उनके कदम इस घर की तरफ बढ़ जाते हैं···। ···खुदा परछाइयों में डूब जाता है और चेतना संघ की खूबसूरत लड़की उनकी बाहों के दायरे में बन्द हो जाती है···।···हिन्दू··मुस्लिम·· एकता की मुज्जसिम तस्वीर इस दरवाजे के अन्दर घुसके आप देख सकते हैं···।"

लोग आगे की बात सुनते नहीं हैं···। लाठियां उठ जाती हैं और भीड़ दरवाजा तोड़के अन्दर घुस जाती है। हर सामान परख के तोड़ा जाता है पर रफीक नहीं मिलता है···वह आया ही नहीं था···।···सुमित्रा वृद्ध पिता की काया को संभाले कोने में खड़ी सब देखती है। भीड़ में से कोई भद्दा-सा इशारा करके कहता है—"भगा दिया अपने यार को पर बचेगा नहीं मुसलटा···।"

कटरे के कई मकानों से आग अचानक ही ऊभर उठती है···।··· नाली में पेशाब करते रफीक की पीठ में कोई छुरा घोंपता है। तड़प के

रफीक कहता है—"या अल्लाह···!" छुरा एक ओर फेंक कातिल हंसता है—"स्साले सुमित्रा को याद कर···। खुदा से तेरा क्या वास्ता···?"··· भीड़ रफीक के घर में आग लगा देती है···।

पुलिस की जीप का भोंपू गूंजता हैं ··। भीड़ तित्तर-बित्तर हो जाती है ··। गली में बहती नाली के पानी और पेशाब में रफीक का खून जा मिलता है··। ··खून पानी बन रहा था। या पानी खून···कौन जाने···?

पार्टी दफ्तर में खबर पहुंचती है। अभिजात उत्तेजित हो जाता है—"यह अच्छा नहीं हुआ·· ? ··किसी के निजी मामले को लेकर बलवा क्यों · ? मैं आई. जी. को टैलीफोन करता हूं ··।"

हुसैन कलाई पकड़ लेता है —"खामोश रहकर सिर्फ देखते रहिए···। छोटी-सी जल्दबाजी हमारे लिए खतरनाक मोड़ पैदा कर सकती है। सियासत में एक दो मौत या चन्द बस्तियों का आतिशबाजी की तरह जलना कोई अहम बात नहीं ··। ··इस मौत का फायदा उठाना और जली हुई बस्ती की गर्म राख में दो आंसू ढुलका देना सही सियासत है···।"

पार्टी की जीप में अभिजात कटरे के अधजले मकानों से बेसहारा होकर निकले लोगों को सांत्वना बंधाता है। हुसैन के आदेशों पर कुमुक तैयार थी ही। मस्जिद के सामने ही तम्बू खड़े होने लगे··।

जीप सुमित्रा के दवाजे पर रुकती है। घर के दरवाजे टूटे हुए हैं और अन्दर एक उजाड़ खंडहर का दृश्य है···।··पीठ मोड़े खड़ी युवती को सुमित्रा समझ अभिजात कुछ कहना चाहता है पर सुमित्रा तो पिता के सीने पर मालिश कर रही थी। यह तो शालिनी थी···।···दोनों मुखातिब हो जाते हैं तो अभिजात की नजरें झुक जातीं हैं और शालिनी की आंखों में नफरत का चशमा ऊभर आता है—"आप यहां से जाईए···। चेतना संघ का सिरा पकड़ रफीक भाई का कत्ल और मुसलमानों को सगे बनाना चाहते थे। वो सब हो गया तो यहां किस लिए आए हैं···? जहां रफीक का खून बहा है वहां आप थूक कर आए हैं···फिर यहां क्या करना है···? ··निकल जाईए···सुमित्रा अकेली नहीं है। मैं उसके साथ हूं··· और कई हैं···।"

अभिजात सिर झुकाए बाहर निकलता है। पीछे से शालिनी की नफरत के थूक के छींटे कान में पड़ते हैं···"हिप् पोकेट·· खूनी··।"

हुसैन तमतमा के मुड़ता है पर अभिजात उसकी कलाई पकड़ लेता है। हुसैन अभिजात की आंखों में बसी शालिनी की तस्वीर पहचान लेता है। कुटिल मुस्कराहट उसके चेहरे पर उतर आती है। अभिजात बुझे मन से पार्टी आफिस में लौट आता है··। आउट हाउस में पार्टी आफिस बना रखा है ।बाकी के अड़तालीस घंटे बुझे-बुझे अन्दाज में गुजर जाते हैं·····।अभिजात नहीं मशीन बोलती रही···जैसे।

शालिनी अभिजात और उसकी पार्टी की जीत की खबर रेडियो पर सुनती हैं। अभिजात के पांचों विरोधी जमानत खो देते हैं···।··· हुसैन के चेहरे पर रौनक और मुस्कराहट का दस्तरखान उतर आया है ··इतना बड़ा रिकार्ड उसी की बजह से कायम हुआ है···।···शतरंज तो हुसैन ही खेलता रहा था···।

अभिजात राजनीति का गन्दा और बेहूदा मोहरा बन गया है । शालिनी अन्दर ही अन्दर आहत महसूस करती है खुद को··।·· पर हत्या ···आगजनी और कुटिलता·· इनके सहारे चुनाव जीत कर क्या अभिजात ने अपने दर्प को निभाया है? नहीं सिर्फ उसे पूरी तरह तोड़ दिया है और सुमित्रा को निकाह होने से पहले ही विधवा बना दिया।

हुसैन हर तरफ चहकता है ।पर अभिजात की आंखों से खुशी की हर किरण निर्वासित हो गई है··।··हुसैन टोकता है—"खुशी के मौके पर मातमी चेहरा क्यों?·· अभी तो मिनिस्टर बनना है अभिजात साहब।"

अभिजात हुसैन की हथेली दबा के खामोश खड़ा रह जाता है। अन्दर ही अन्दर महसूसता है कि जहर के दरिया से गुजर के अब अमृत की बूंद मिलना असम्भव है। हुसेन औरत के दर्द को अभिजात के चेहरे पर पकड़ लेता है···। आज तो व्यास जी के घर जलसे में जाना है अभिजात को, इसी बीच सब करना होगा हुसेन को···।···एक आदमी को सड़क से उठा अगर एम. एल. ए. या मंत्री बना सकता है हुसेन तो क्या एक अदद लौंडिया के मामले में हार जाएगा?

रात करीब एक बजे अभिजात आउट हाऊस में बने पार्टी दफ्तर के

पार्श्व में अपने कमरे में लौटता है···।···बिस्तर पर चादर लपेटे नारी देह को लाइट जलाते ही पहचान लेता है···।—"शालिनी तुम···?"

पर शालिनी तो बेहोश है।···नहीं···। शायद उसे क्लोरोफाम सुंघाया गया है···।···अभिजात जोर से आवाज देता बाहर आता है—"बाबू···! "रामसिंह···। उम्मेद सिंह ! ··करीम ! ···।"

सब हाथ बांधे खड़े हो जाते हैं···।···अभिजात गुर्रा के पूछता है तो उम्मेद सिंह उगल देता है—"हुजूर हुसैन साहब का हुक्म था···।"

"ईडियट्स···! ···जाओ" पानी लाओ— डांटता हुआ अभिजात वापस लौटता है। पानी आ जाता है तो चेहरे पर छींटे मारता है ··। तेज रोशनी और पानी की ठण्डक से शालिनी कुनमुनाती है ··। अभिजात को शालिनी अपसरा की मानिन्द लगती है। चाहता है कि वह लेटी रहे और अभिजात देखता रहे। शालिनी बार-बार कुनमुना के सो जाती है···। ···मोहान्वित अभिजात के मानस में प्यार करवटें बदलता रहता है। कचहरी याथा ने से तभी तीन घण्टे बजते है। कुर्सी पर बैठा अभिजात शालिनी को निहारता है। शालिनी अचानक एक अंगड़ाई के साथ उठ बैठती है। तेज रोशनी में आंखें खोलने पर खुलती नहीं है।

"कैसी तबीयत है अब शालू !" अभिजात स्नेह से डूबे स्वर में पूछता है···। पर शालिनी बिजली की तेजी से पंलग से कूद पड़ती है,···"तुम···! ···तो तुम लाए हो मुझे यहां ··! ···भोग लिया—तो कूड़ेदान में क्यों नहीं फिकवा दिया अब तक ?"

"नहीं शालू! मुझे नहीं मालूम कि तुम कैसे आई···! ···जब लौटा तो तुम···।" अभिजात की जीभ लड़खड़ाती है ··।

"झूठे···।···रफीक के हत्यारे! गरीबों के घर जलाकर सत्ता जुटाने के बाद··शालिनी से भी भुगत लिया···।···तुम तो पूरे हिटलर के अवतार हो···।" फिर पागल की तरह खिलखिलाकर हसती और कहती है—"मीठे अंगूरों के लालच में जड़ के करीब लोग जिन्दा मछली गाड़ते हैं ··और अभिजात लाशों के चबूतरे पर ऊंचा महल बनवायेगा क्योंकि समर्पण और बलात्कार में उसके लिए कोई अन्तर नहीं है।"

बलात्कार···।···किसने किया···? ···कहीं हुसैन तो शालिनी की

बेहोशी का फायदा नहीं उठा गया !···कमीना···कभी देखूंगा···!

शालिनी दरवाजे की तरफ बढ़ती है। अभिजात कहता है—"अभी अन्धेरा है···ड्राइवर तुम्हें घर छोड़ आयेगा ··।"

"अन्धेरा! अन्धेरे के तो तुम सबसे बड़े सौदागर हो"—कहने के साथ विद्रुप में शालिनी के होट मुड़ते हैं।

अभिजात अन्दर ही अन्दर शर्म से नहा जाता है···कैसे कहे कि शालू तुम्हें पाने के लिए···रेत से दलदल में उतर आया हूं और आज भी मृगतृष्णा से मुक्त नहीं हुआ हूं ··। भाग्य की विडम्बना ने आज भी मुझे कटघरे में खड़ा कर दिया है और वक्त ने सफाई के काबिल नहीं रक्खा हैं···।

शालिनी आगे बढ़ती है तो हाथ पकड़ रोक लेता है—"शालू···मैं सुबह ही त्याग पत्र दे दूंगा···।···जो हो रहा है तुम्हारी अपेक्षा से हुआ है और मेरे अज्ञान से···।"

शालिनी झटके से हाथ छुड़ा···खा जाने वाले अग्नेय नेत्रों से देख कहती है—"छी ! तुम्हारा चेहरा दिन और रात के साथ बदलता रहता है···।···तुम पर कौन विश्वास करेगा ?" फिर चलने से पूर्व ठीक अभिजात के सामने थूक देती है···मानो अभिजात किसी राक्षस की ध्वंसित मूर्ति हो जिसके अवशेष भी घृणा पा सकते हैं।

ड्राइवर बिना आवाज किए गाड़ी रोक चला जाता है। हलकी सी दस्तक से ही दरवाजा खुल जाता है···। अन्दर मर्मान्तिक पीड़ा समेटे खड़ी ताई पूछती है—"कहां गई थी ?"

"मरने—। "जवाब देके शालिनी चल पड़ती है।

"फिर मरी क्यों नहीं—!" पीछे से ताई पूछती है।

शालिनी बिस्तर पर बिखर फफक उठती है। ताई बिस्तर पर ही बाहों में समेटे बाल सहलाती हुई कहती है, "तुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थी बेटी।"

शालिनी ताई की आंखों में झांकती है···मानो पूछ रही हो—क्या तुम्हें भी विश्वास नहीं है शालिनी का···?···क्या तुम भी सोचती हो कि शालिनी लुट चुकी है ?

निकलते हुए सूरज के साथ ताई की आंख लग जाती हैं···।··· शालिनी देर नही करती है। पूरी देह को मिट्टी के तेल से तरबतर कर लेती है जिससे बचने की कहीं गुंजाइश न रह जाए···।···फिर फक्क से तीली जला अन्दर ही अन्दर अभिजात को सम्बोधित कर कहती है—लो अभिजात···।···तुम्हारे यज्ञ के लिए अन्तिम आहुति देती हूं अपनी···। जिससे तुम निर्विघ्न हो युग नर्क का निर्माण कर सको और मेरी आंखें तुम्हारे राक्षसी स्वरूप को न देख सकें···।

चीख पुकार। पड़ोसियों की भाग दौड़। फिर पुलिस का थाना···। ताई, दृष्टि के अदृश्य क्षितिजों में बस परछांईयां अहसासती हैं···आंखों की पुतलियों में तो जड़के रह गई है शालिनी की कोयला बनी लाश···।··· पड़ोस की औरतों से पूछनी है—"सोना तो जल के कुन्दन हो जाता है··· फिर शालिनी कोयला कैसे बन गई···?"

लाश पोस्टमार्टम के बाद दूसरे दिन बारह बजे मिलती है। स्कूल की मास्टरनियां··चेतना संघ की सदस्याएं और पड़ौसी हैं शव यात्रा में। लाश घर ले जाने से क्या फायदा···? इसीलिए सीधे मरघट ले जाने की योजना है पर शहर की सड़कें तो खचाखच भरी पड़ी हैं···।···शहर का अभिजात मिनिस्टर बनेगा···। पार्टी की तरफ से जलूस निकाला जा रहा है। लोग अर्थी जमीन पर रखके जलूस देखने लगते हैं। अर्थी के पास हताश सी बैठी है सुमित्रा···। बैंड मधुर ध्वनि बजाता निकल जाता है···। पीछे कछुआ छाप स्पीड से आ रही है जीप···। जीप पर अभिजात है··। जनता को नमस्कार करता हुआ और पीछे बैठा है हुसैन···।

सड़क के एक ओर रखी अर्थी के पास सुमित्रा की काया को पहचान लेता है अभिजात। अन्दर ही अन्दर सूख जाता है ··। जीप रुकवा के उस ओर चल पड़ता है···। सुमित्रा मुंह फिरा लेती है। पड़ौसी बताते हैं··· "शालिनी है चेतना संघ की संचालिका·· सूरज निकलने के साथ-साथ कल तेल डाल जल मरी।' अभिजात संज्ञा शून्य हो जाता है ··। शालिनी ही नहीं गई···एक बलात्कार और हत्या का दायित्व भी और दे गई···। ···छी, लानत है इस राजनीति और सत्ता की आसक्ति पर···। ··तभी हुसैन कलाई पकड़ के पीछे खींच लाता है···।···अभिजात कठपुतली की

तरह जीप में आ खड़ा होता है। साथ चलती हुई जनता कहती है—महान व्यक्ति है···तभी तो उतर के आए और आंख भीग उठी हैं··।··· इस शहर का सौभाग्य है कि ऐसा व्यक्ति मंत्री बनेगा···।

राजधानी में गवर्नर हाऊस में सबसे ज्यादा तालियां अभिजात को लेके बजीं···।···थका हुआ अभिजात होटल में लौटता है। हुसैन ने काफी लोगों को बुला रखा था। सबसे परिचय कराया हुसैन ने—"ये हैं मलिक साहब! इन्होंने आपके चुनाव पर आठ लाख रुपये खर्च किए···। ये हैं सेठ सक्सेरिया ··इन्होंने पांच लाख दिए थे···।···ये हैं अफजल भाई··· आठ ठेके हैं इनके प्रांत में ··। काम करने वालों को जामें सेहत इन्हीं के यहां से आता था।"

हुसैन बोलता रहता है···।···अभिजात के अन्दर से उभरता त्याग और सेवा का तोतली बोली बोलता सपना अचानक अन्धे कुएं में चीख के डूब जाता है! सोचा था शालिनी की आत्मा को अपनी सफाई दे सकूंगा पर पांच साल तो कर्ज उतारने में ही बीत जाएंगे। अजगरों की श्वास का जहर अभिजात को निरन्तर छू रहा था। हुसैन ने जिद की थी या अभिजात बहुत प्यासा था कि कड़वी शराब भी गटागट पीता गया···।

अब रोज पीता है अभिजात ··।···रात खुमारी में ही गिरिया आटो वालों के द्वारा भेजी सौगात को छूकर पूछा था—"शालू हो न तुम?"

अन्धेरे में अपने बिस्तर पर उतरी पहली नारी को बिना देखे ही उसने भोग लिया शालू मानकर···।···आंख खुलने से पहले ही जा चुकी थी वह···। मसले हुए फूलों को यकायक कांटों की तरह महसूस किया अभिजात ने।

फिर सिर पकड़ के सोफे पर बैठ जाता है···।···क्या राजनीति में आदमी अपनी जिंदगीं···अपने गम जीते हुए जिंदगी नहीं काट सकता है···?और यह शालू ।···मर के भी उसके अन्दर से मरती नहीं है···। ···इस नाम के हस्ताक्षर दिल पर ऐसे उतर गए हैं कि गौरव, सुख, दौलत सब कुछ कांटों की तरह चुभते हैं···।·· जिस जंगल में अनचाहे ही वह पहुंच गया है वहां सब कुछ है···बस प्यार के फूल नहीं खिलते हैं···।··· छूते ही हर पौधा कीकर बन जाता है···जमीन का जर्रा-जर्रा कांटे की

तरह गड़ता है···। चलो तो चुभता है। रुको तो दुखता है···।···इस बबूल के बन से तन और मन क्या कभी वापस निकल पायेंगे ?

अभिजात की दृष्टि विद्या औखल के कलात्मक चित्र तिष्य रक्षिता और कुणाल की आंखों पर टिक जातीं है। अनायास ही चित्र से तीखी मुस्कराहट छोड़ती तिष्य रक्षिता अदृश्य हो जाती है और कुणाल की लहू टपकाती दो आंखें चित्र से निकल उसके भाल से चिपक जाती हैं। अभिजात भागना चाहता है तभी चारों तरफ आंखें ही आंखें उसे घेर लेती हैं। कमरा एक अदालत का रूप ले लेता है···। भाल पर चिपकी लहू लुहान आंखों की ओर इंगित कर न्यायधीश की छाया कहती है—यह कुणाल की अदालत है अभिजात। इन आंखों के जुर्म को तुम चाहकर भी नकार नहीं सकते हो !

●●